http://www.jainkosh.org

आप्तमीमांसा-प्रवचन

(सप्तम भाग)

●

प्रवक्ता :

(अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी)

●

अद्वैतैकान्तपक्षेपि दृष्टो भेदो विरुध्यते ।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते ॥२४॥

अद्वैतकान्ताग्रहकी दूषितता— अद्वैत एकान्त पक्षमें भी यह दोष है कि कारकोंमें क्रियावोंमें जो भेद देखा जा रहा है विरुद्ध पड़ जायगा। प्रसिद्ध व दृष्ट भेद यही सिद्ध करता है कि अद्वैत एकान्त नहीं है। यदि अद्वैत एकांत माननेपर भी कारक और क्रिया मानोगे तो उसका अर्थ यह है कि वही एक अद्वैत ब्रह्म है और उससे ही वह कार्य उत्पन्न हुआ है सो कोई एक अपनेसे उत्पन्न नहीं होता है। यहां शंकाकार अद्वैतवादी कहता है कि आचार्योंने सत् असत् एक अनेक एकांतमें दोष बताया सो भले ही बतायें, पर, एक अद्वैत एकांत माननेपर तो दोष नहीं है और न अनेकांतकी सिद्धि है। केवल एक ही ब्रह्म है तब वहां अनेकांतका अवकाश कहां है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि अद्वैत एकांतका मंतव्य यों उचित नहीं है कि प्रत्यक्ष आदिकसे उसमें विरोध आता है। प्रत्यक्षमें नाना पदार्थ दिख रहे हैं और उन पदार्थोंके नाना प्रकारके कार्य चल रहे हैं। यदि उन कार्योंको देखकर कोई लोग यह समझें कि नाना पदार्थ हैं दुनियामें, केवल एक ही नहीं है। किसीका केवल यही मंतव्य मात्र हो और वही प्रमाणित मान लिया जाय सो नहीं माना जा सकता। यह क्रिया कारकका भेद प्रमाणसे सिद्ध है प्रत्यक्ष और अनुमानसे सिद्ध है, प्रत्यक्ष और अनुमानसे प्रसिद्ध है। अब उस क्रिया कारक भेदका अभाव कहना केवल एक अद्वैत मान लिया इतने मात्रसे तो यह प्रमाणीक बात नहीं है। जैसे कि कोई एक क्षणिकका एकांत करले तो वह प्रमाणभूत नहीं है। क्षणिक एकांतमें जैसे क्रिया और कारक नहीं बनता है उसी प्रकार इस अद्वैत एकांतमें भी क्रिया कारक नहीं बनता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाणसिद्ध क्रियाकारकादि भेदके प्रतिरोधकी असंभवता होनेसे अद्वैतैकान्तकी असंगतता—अद्वैतका अर्थ है एकात्मक अर्थात् एक स्वरूप, केवल एक ही सत् रहना। अद्वैतका यह अर्थ यों निकला कि अद्वैतमें दो शब्द हैं—अ और द्वैत। द्वैतका अर्थ है जो दो पदार्थोंसे व्याप्त हो। दो पदार्थ हुए मूलमें प्रमाण और प्रमेय। फिर इसके विस्तारमें भेद प्रभेदमें अनेक पदार्थ हो जाते हैं। तो यों द्वैत शब्द बना और द्वीत ही द्वैत कहलाता है। व्याकरण शास्त्रमें स्वार्थमें क प्रत्यय होता है उससे ही द्वैतशब्द द्वैतके रूपमें आता है, और जो द्वैत न हो उसे कहते हैं अद्वैत। उस अद्वैतका जो एकांत है अर्थात् वह ही मात्र एक है, इस प्रकारका जो अभिप्राय है उसे कहते हैं अद्वैत एकांतका पक्ष। पक्षके मायने हैं केवल संकल्प मात्रसे एक मान लेना। तो केवल अद्वैत एकांतकी प्रतिज्ञा करने मात्रमें तत्त्व समीचीन सिद्ध नहीं हो जाता। क्योंकि यहां साक्षात् जो देखा जा रहा है अथवा अनुमानसे जाना जा रहा है कारकों और कर्ता आदिकमें भेद, क्रियामें भेद बन रहा है, कोई ठहर रहा है और कोई गमन कर रहा है, कोई स्थिर है, कोई हलन चलन कर रहा है। ये सारे भेद प्रत्यक्ष और अनुमानसे जाने जा रहे हैं। इसका निषेध नहीं किया जा सकता और अद्वैत एकांतके माननेमात्रसे जो देखा गया भेद है वह विरुद्ध हो जाता है। तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध जो क्रिया कारकका भेद है इसका निरोध करना तो असम्भव है जैसे क्षणिक एकांतमें केवल मानने मात्रसे तो वस्तुस्वरूप नहीं बन पाता। तो इसी प्रकार अद्वैत एकांत पक्षमें भी कारक क्रियाका भेद जो दिख रहा है यह विरुद्ध हो जायगा।

शंकाकार द्वारा अद्वैतैकान्तका प्रतिपादन—यहां शंकाकार कहता है कि यद्यपि तत्त्व अद्वैत रूप है फिर भी प्रत्यक्ष आदिकसे जो कारक भेद देखा जा रहा है, इसमें कोई विरोध न आ सकेगा। देखा ही जा रहा है कि एक ही वृक्ष है उसके एक साथ और क्रमसे उसमें कर्ता आदिक अनेक कारकस्वरूपकी प्रतीति हो रही है। जैसे कि एक काव्यमें बताया गया है कि वनमें वृक्ष खड़ा हुआ है, उस वृक्ष का बतायें आश्रय कर रही हैं, वृक्ष द्वारा कोई हाथी टक्कर खा गया है और गिर गया है, वृक्षके लिए पानी देना चाहिए, वृक्षसे फूली हुई मंजरीको लाओ, वृक्षकी शाखायें उन्नत हैं, वृक्षमें पक्षियोंने घोंसला बनाया, हे वृक्ष तुम क्यों कप रहे हो? इस काव्यमें वृक्षमें सातों ही कारक घटाये गए हैं और सम्बोधन भी बताया गया है। तो अब देखिये—वृक्ष तो वह एक है किन्तु उस एक वृक्षमें ही ये सब कारक घटित किए गए हैं। तो एक भी हो कोई तो उस एकमें भी यह सब भेद विरोधको प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार क्रियाका नानापन भी एकमें सिद्ध हो जाता है। रहा आये कोई एक और उसकी क्रिया नाना रहें इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। जैसे कि एक ही कोई देवदत्त नामक पुरुष है। उसके सम्बन्धमें कई क्रियायें बतायी जा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकती हैं। कोई एकदेशमें गमन कर रहा है तो वह दूसरे देशमें अगमन कर रहा है। वह सोया हुआ है तो ठहरा हुआ भी है और सोया भी है। तो एक साथ कई क्रियायें एक व्यक्तिमें भी सम्भव हो जाती हैं। अतः यह कहना कि एकमें क्रिया कारक भेद नहीं बनता, यह बात सुसंगत है। इसी प्रकार जैसे कि एक पदार्थमें अनेक क्रियायें अनेक कारक बन गए एक परमब्रह्म होकर भी चूंकि ये समस्त क्रिया कारक भेद स्वरूप हैं इस कारण उसमें ये भेद विरोधको प्राप्त नहीं होते जैसे कि चित्रज्ञानमें, वह ज्ञान एक है लेकिन आकार नाना प्रतिभासित होते हैं और ऐसी ही विचित्रता है कि यहां एकत्वका घात नहीं हो रहा। इसी प्रकार एक परमब्रह्म होकर भी जो ये नाना दृश्य दिख रहे हैं इनमें भी किसी प्रकारका विघात नहीं है।

क्रियाकारकभेद व अद्वैतकी विरुद्धता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान – अब उक्त शंकाकारसे यह पूछा जाना चाहिए कि यह बताओ कि क्रिया कारक भेदका जो यह जाल है तो क्या यह अजन्मा है या जन्मवान है? जो कुछ भी चलने उठने आदिककी क्रियायें नजर आती हैं और जो कुछ भी कर्ता कर्म आदिक कारकभेदनजर आते हैं ये सब यदि अजन्मा हैं, तो यह बात तो कह नहीं सकते क्योंकि ये सब अनित्य हैं। जो कादाचित्क हैं, कभी होते और कभी नहीं उसको अनादि सिद्ध नहीं कह सकते, उत्पन्न नहीं हुए ऐसा नहीं बता सकते। जो अजन्मा होता है वह कादाचित्क नहीं होता। शाश्वत रहता है, जो कहीं किसी भी प्रकार उत्पन्न न हो वह किसी समय रहे किसी समय न रहे ऐसा नहीं है। जैसे कि आत्मा अथवा आकाश। आकाश अजन्मा है तो कादाचित्क नहीं कहा जा सकता, कि कभी हुआ और कभी नहीं हुआ। वह तो शाश्वत है लेकिन ये क्रिया कारकके भेद ये तो कादाचीत्क हैं। कभी हुए हैं इस कारण इन्हें अजन्मा नहीं कह सकते। यदि इन्हें जन्मवान कहेंगे और कहना ही पड़ेगा। सभी लौकिकजनोंकी प्रतीतिमें भी आ रहा है कि क्रिया अभी न थी अब यह क्रिया हुई है तो क्रिया कारक भेदको जन्मवान कहेंगे तो यह बताओ कि इन क्रिया वालोंकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है? यदि कहो कि उसी परम पुरुष एक ब्रह्मसे हुई है तब तो अद्वैतकी सिद्धि कहां रही? एक परम पुरुष माना, उससे क्रियाकारकभेद उत्पन्न हुआ। तो उस कारण ब्रह्मसे कार्य हुआ यह ही द्वैत सही कि एक परमब्रह्म तो है कारण और ये नाना भेद हैं कार्य, सो यों तो कारण और कार्यका द्वैत सिद्ध तो हो ही गया है। यदि शंकाकार कहे कि क्रिया आदिक कार्य ब्रह्मसे अभिन्न हैं अतएव दो बातें नहीं कही जा सकती। वही एक अद्वैत ब्रह्म है। क्योंकि क्रिया आदिक जो कार्य दृष्टिगत होते हैं वे ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, तद्रूप ही हैं। यदि ऐसा मंतव्य न हो तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसीसे वही बना। क्रिया भी ब्रह्म ही रही और ब्रह्म सो ब्रह्म है ही। अब क्रिया उत्पन्न हुई इसके मायने यह हुआ कि उस हीसे वह हुई। तो कोई एक स्वयं अपने आपसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न हो जाय, उसीका उससे जन्म हो यह बात कैसे सम्भव है ? और मान लो कि वह ब्रह्म कार्यसे भी अभिन्न है तो जब कार्यसे अभिन्न है ब्रह्म, तब उसका अकार्य-पना कैसे कह सकेंगे कि उस ब्रह्मका कोई भी कार्य नहीं है और जब उस ब्रह्मको अकार्य नहीं कह सकते तो उसके नित्यपना भी नहीं कह सकते। जब उस परम पुरुष का कुछ कार्य हो तो कार्य होनेसे उसे अब नित्य नहीं कह सकते। यदि कहो कि कार्य किसी परसे उत्पन्न हुआ है जितनी क्रियायें दृष्टिगत हैं वे सब परसे उत्पन्न होती हैं तो ऐसा माननेमें द्वैतकी सिद्धि हो जाती है। एक तो वह पुरुष था ही जो कि मूलमें माना गया और उससे भिन्न कोई पर भी हो गया। तो यों क्रिया और कारकके भेदका कारणभूत कोई पर मानना ही पड़ा। तो यों अद्वैत न रहा, किन्तु द्वैत तत्त्व हो गया।

क्रियाकारक भेदका परसे जन्म माननेपर द्वैतकी सिद्धि—यदि शङ्काकार यह कहे कि वह पर तो अनादि अविद्यारूप है इस कारणसे उसका कोई स्वभाव नहीं, वह वस्तु ही नहीं, वह अकिञ्चित स्वरूप है, तो ऐसा स्वरूप रहनेका अर्थात् मिथ्यारूप जो कुछ पर माना गया है तो वह अविद्यारूप ही तो रहा, उसे दूसरा पदार्थ है, यों नहीं कह सकते। एक ही मात्र परमपुरुष है, किसी अन्यमें द्वितीयपना नहीं कह सकते, इस कारण द्वैतकी सिद्धि नहीं होती है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यदि ऐसा मंतव्य है तो यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो अकि-ञ्चित् रूप है, स्वभावरहित है, अवस्तु है, वह कारण बन जाय। शङ्काकार कहता है कि वह कार्य भी अकिञ्चित् स्वरूप है, जिसके कारणके सम्बन्धमें अभी दोष कहा गया कि वह कारण निःस्वभाव है, अकिञ्चित् स्वरूप है, तो जो अकिञ्चित् रूप हो उसे कारण कैसे कहा जाय ? तो बात यह है कि कार्य भी अकिञ्चित स्वरूप है, इस कारण यह दोष नहीं आता। यदि कारणको हम मानते अवस्तु और कार्यको मानते वस्तु तब इसमें दोष था। इसके उत्तरमें कहते हैं—तो क्या अब अकिञ्चिद्रूप खरविषाणसे अश्वविषाणका जन्म हो जायगा ? क्योंकि अवस्तुसे अवस्तुका जन्म अब स्वीकार कर लिया। सो ऐसा तो है नहीं। अतः मानना होगा कि द्वैत है, सब कुछ है जगतमें वस्तु।

अविद्यास्वरूप कारणसे अविद्यास्वरूप कार्यकी उत्पत्ति सङ्गत न होनेसे कारणकार्यभेदकी वास्तविकताकी सिद्धि—यदि शङ्काकार यह कहे कि खर-विषाणसे अश्वविषाणका जन्म कैसे हो जायगा ? ऐसा तो कभी देखा ही नहीं गया है। तो इसके उत्तरमें यह समझें कि इसी प्रकार अविद्यास्वरूप कारणसे अविद्या-स्वरूप कार्यकी उत्पत्ति कैसे हो जायगी ? जैसे कि खरविषाण और अश्वविषाण ये दोनों स्वरूपरहित हैं, कोई वस्तु नहीं है इसी प्रकार अविद्या भी कोई वस्तु नहीं है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और कारणकार्यको मान लिया अब अविद्या स्वरूप तो बतलाओ कि अविद्यास्वरूप कारणसे अर्थात् निःस्वभाव अविद्यास्वरूप कार्यकी याने निःस्वभावकी उत्पत्ति कैसे हो जायगी ? शङ्काकार कहता है कि इंद्रजालिक आदिक घटनाओंमें तो मायामय याने असत्य स्वरूप अग्नि आदिकसे मायामय धूम आदिकका ही जन्म देखा जा रहा है इस कारणसे यह कोई दोष नहीं है, याने जब मायामयी अग्निसे मायामयी धूम देखा जाता है तब अविद्या स्वरूप कारणसे अविद्या स्वरूप कार्यकी उत्पत्ति हो जाय, इसमें क्या दोष है ? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यहां भी तो अग्नि और धूमादिक सर्वथा मायामय नहीं सिद्ध होते। और अग्निका व धूमका जो प्रतिभास है, वह मायामय नहीं है क्योंकि स्वसम्वेदनसिद्ध है वह प्रतिभास। अग्निका परिज्ञान और धूमका परिज्ञान ये बराबर प्रतीतिसे सिद्ध हो रहे हैं और जो बाहरमें सद्भूत द्रव्य आदिक हैं उनके स्वरूपमें भी मायास्वभावपना नहीं पाया जाता क्योंकि उनमें सद्रूपता का व्यभिचार नहीं है, वे सब हैं तो सद्रूप। यदि उन सद्रूप पदार्थोंमें भी व्यभिचार मान लिया जाय तो सत्ता भी व्यभिचारी बननेसे अवस्तु बन जायगी, फिर सत्ता ही कोई तत्त्व न रहा। शङ्काकार कहता है कि देखिये ! अग्नि और धूमका जो विशेष आकार है वह तो मायारूप है फिर कैसे मायारूपताकी सिद्धि बतला रहे हो ? उत्तरमें कहते हैं कि उन विशेषाकारोंसे रहित जो वस्तु मान रहे हो उस वस्तुमें व्यतिरिक्त कोई माया ही सम्भव नहीं होती और इसी प्रकार क्रियाकारक भेदका जो प्रपंच है, समूह है उस आकारसे रहित परम ब्रह्मको छोड़कर कोई अविद्या फिर सम्भव ही न होगी। तो इस तरह वेदान्तवादियोंके यहां भी अभिद्यारूप ब्रह्मसे जिसे कि कारणभूत माना है, क्रियाकारक आदिक कार्य जो कि अविद्यास्वरूप कहे जा रहे हैं उनकी यदि उत्पत्ति हो जाय याने ब्रह्म भी अविद्यास्वरूप रहा और कार्य भी अविद्या स्वरूप रहा तो दोनोंका स्वरूप एक हो गया और वहां मान रहे कारण कार्य भाव, तो कैसे कहा जायगा कि खुद ही खुदसे उत्पन्न हो गया। खुदकी खुदसे उत्पत्ति क्या ? और कोई माने कि खुदका भी जन्म खुदसे होता है तो यह उनका आग्रह मात्र है, क्योंकि यह बात प्रमाणसे विरुद्ध है। प्रमाणविरुद्ध बातकी व्यवस्थाकी जाना शक्य नहीं है।

क्षणिकवादकी तरह अद्वैतवादमें भी अवस्तुसे अवस्तुकी उत्पत्तिकी असिद्धता—जैसे की क्षणिकपनेमें वेदान्तवादी यह दोष देते हैं कि जब कोई वस्तु ही नहीं उपादान अन्तरङ्ग कारण ही कुछ नही है तो सर्वथा असत् भी सत् कैसे बन गया ? वहां यदि क्षणिकवादी यह कहते हैं कि खुद की खुद से ही उत्पत्ति होती है क्योंकि उत्पत्तिमें कोई दूसरा कारण नहीं होता तो प्रकृत शंकाकार कहता है कि यह जो क्रिया और कारकका भेद नजर आ रहा है वह न तो स्वतः उत्पन्न हुआ है न परसे उत्पन्न होता है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथन तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि कोई सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें बड़बड़ाता है। यह कहना कि न स्वतः उत्पन्न होता न परतः उत्पन्न होता किन्तु उत्पन्न होता ही तो ऐसी जानकारीका फिर कोई उपाय ही न रह सकेगा। और, यह बात आगम और प्रत्यक्षसे विरुद्ध पड़ती है। जो कुछ भी न तो स्वसे उत्पन्न होता न परसे उत्पन्न होता और जन्म वाला हो तो यह बात न प्रत्यक्षसे सिद्ध है न आगमसे सिद्ध है। इस कारणसे उत्पन्न ता ही है यों कहकर अथवा जानकारीके उपाय रहित वचन बोलकर वह अपनेको सोए हुएकी तरह सिद्ध कर रहा है। इस कारण जो प्रत्यक्षसे विरुद्ध बात हो वह सही नहीं हो सकती। जैसे कि नैरात्म्य अर्थात् क्षणिकत्व सर्व पदार्थ समूल नष्ट हो जाते हैं दूसरे समयमें, केवल एक समय रहते हैं इस प्रकारका कथन जैसे ब्रह्माद्वैतवादियोंने समीचीन नहीं माना उसी प्रकार यह अद्वैत भी विरुद्ध होता है। क्योंकि यहां क्रिया और कारकका भेद प्रत्यक्षसे दृष्टिगत हो रहा है। शंकाकार कहता है कि एक पदार्थमें भी क्रिया और कारकका भेद प्रत्यक्ष आदिकसे सिद्ध हो जाता है और है चीज वह एक ही। जैसे कि स्वप्नज्ञान, स्वप्नमें जो सम्वेदन हो रहा है वह एक है किन्तु वहां यह करने वाला, यह किया गया इस तरह वहां क्रिया कारकका भेद भी विदित होता जाता है फिर अद्वैत विरुद्ध हो जाय यह कैसे कह सकते हैं ? अद्वैत भी रहा आये और क्रिया कारकका भेद भी बनता रहे। क्रिया कारक भेद होनेपर भी एकपनेको विरोध नहीं आता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि स्वप्नका दृष्टान्त देना युक्तिसंगत नहीं है। स्वप्नसम्वेदन भी यदि एक माना जाय तो उसमें क्रिया कारकके भेदका विरोध होना ज्योंका त्यों उपस्थित है। वह स्वप्न सम्वेदन भी एक रूप नहीं है। वहांपर क्रिया विशेषका सम्वेदन कुछ अन्य ही चीज है जो कि अपनी वासना से उत्पन्न हुई है। पुरुषने पहिले जागृत दशामें जिन-जिन करतूतोंकी वासना बनायी उन वासनाओंसे अब स्वप्नमें भी क्रिया विशेषका सम्वेदन होता है और उस स्वप्नमें कारक विशेषका सम्वेदन कुछ अन्य ही चीज है। जैसे प्रत्यक्ष हुआ, अनुमान प्रमाण किया आदिक वे अनेक हैं, एक नहीं कह सकते उस स्वप्न सम्वेदनको। यदि स्वसम्वेदनको एक कहा जाय तो उसके कारण और वासनाओंमें फिर भेद न होनेका प्रसङ्ग हो जायगा। वासनाभेद का अभाव तो वेदान्तियोंको भी इष्ट नहीं है। वासनाभेद जैसे अन्य दार्शनिकोंने माना, वैसे ही स्वयं शङ्काकारने भी माना है। इससे सिद्ध है कि जागृत दशामें जिस तरह सम्वेदनमें क्रियाकारक भेद है उसी तरह स्वप्न आदिककी अवस्थामें भी इन अनेक शक्तिस्वरूप ब्रह्मको जो क्रियाकारक विशेषका प्रतिभास है, उसमें जो भेद है वह बराबर व्यवस्थित है। स्वप्न सम्वेदनमें भी क्रियाकारक विशेषका प्रतिभास जुदा-जुदा है ही।

अद्वैतकी प्रत्यक्षादि प्रमाणविरुद्धता—अब यहां शङ्काकार कहता है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखिये ! आत्मा और आकाश आदिक एक हैं, निरंश हैं। आकाशका खण्डन तो नहीं होता इसी प्रकार आत्माका भी खण्डन नहीं होता। तो एक और निरंश होनेपर भी उनमें अनेक कारक आदिकका आलम्बनपन बन जाता है, एक आत्मामें अनेक कारकोंका प्रयोग जैसे हो जाता है अथवा आकाशमें आकाश है, आकाशमें वस्तु है, आदिक नाना कारकोंका आलम्बन वहां भी देखा जाता है फिर भी वह एक और निरंश है उसी प्रकार ब्रह्म भी एक है और जिसपर भी वहां अनेकाकार आदिकका अवलम्बन सिद्ध हो जाता है। इसमें क्या विरोध है ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि कोई भी पदार्थ जो एकरूप हो, आत्मा हो, आकाश आदिक हो तो स्याद्वाद शासन में वहांपर भी अनेक क्रियाकारक विशेष प्रतिभासका आश्रयपना सिद्ध है। तो प्रत्यक्ष आदिकसे अद्वैत मानना यह विरुद्ध बात है। शङ्काकार कहता है कि देखिये ! अद्वैत प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध है यह बात कैसे कह रहे हो ? क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक स्वयं भ्रान्त हैं, समीचीन नहीं हैं। तो भ्रमवाले पदार्थोंसे किसीमें प्रमाणता क्या सिद्ध कर सकते ? उत्तरमें कहते कि यह बात भ्रांत नहीं विदित होती। कुम्हार दण्ड आदि के द्वारा घड़ा बनाता है, कुम्हार हाथके द्वारा भोजनको खाता है आदिक जो प्रत्यक्ष दृष्टिमें आ रहे हैं ये क्रियाकारक भेद भ्रांत नहीं हैं जिससे कि अद्वैतमें विरोध न आये ! अद्वैत प्रत्यक्षसे विरुद्ध है क्योंकि वहां परिणमन क्रियाकारक सभीके सभी उपयुक्त नहीं हो रहे बाह्य तथा अन्तरङ्गमें सर्वत्र आप देख लो ! याने अन्तरङ्गमें तो आत्मामें क्रियाकारक आदिक रूप नजर आयेंगे और वे कथंचित् भिन्न रूपसे समझे जायेंगे। बाह्य पदार्थोंमें भी जो क्रियाकारक आदिक रूप है वह कथंचित् भिन्न है, क्योंकि भिन्न प्रतिभास होनेसे। भिन्न प्रतिभास हो ही रहा है। यदि कथंचित् भिन्न नहीं होते तो उनमें यह भिन्न प्रतिभास नहीं होता। इस अनुमानसे सिद्ध है कि अनेक पदार्थ हैं और उनमें क्रियाकारकका भेद भी है। अतः अद्वैत नहीं है। और आगममें भी बताया है कि जीव नाना होते हैं, तब ये सब बातें भ्रमसे हुई कैसे कही जा सकती हैं ? जिससे कि अद्वैतमें विरोध आये, अद्वैत प्रत्यक्षविरुद्ध है।

अनुमान प्रयोगसे भेदप्रतिभासके मिथ्यात्वकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि देखिए एक अनुमान द्वारा ये सब प्रत्यक्ष मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं। अनुमान प्रयोग है कि विवादापन्न प्रत्यक्षादिक मिथ्या भी हैं भेद प्रतिभास होनेसे स्वप्न प्रत्यक्षकी तरह। जैसे स्वप्नमें जो कुछ समझा जा रहा है वहांपर भी भेद प्रतिभास तो रहा है तो वहांका सब ज्ञान मिथ्या हैं, सब लोग जानते ही हैं। स्वप्नमें निरखी हुई बात समीचीन नहीं बतायी जाती है। तो जैसे स्वप्नका जो भेद प्रतिभास है वह मिथ्या है ऐसे ही यहांपर भी जो कुछ भी भेद प्रतिभास हो रहा है वह सब भी मिथ्या है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह अनुमान प्रयोग अद्वैतको और प्रत्यक्ष आदिकके मिथ्यात्वको सिद्ध नहीं कर सकता। आप ही बतलाओ शंका-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार कि जो आपने इस अनुमानका प्रयोग किया है है तो इस अनुमानमें पक्ष भी है, हेतु भी है, दृष्टान्त भी है । तो इसका भेद प्रतिभास हो रहा है ना ? जब अनुमानको सत्य प्रमाणित करने चलते हैं तो वहां सब अङ्ग बताने होते हैं । यह पक्ष है, यह हेतु है, यह साध्य है यह दृष्टांत है । तो यहां जो कुछ भेद प्रतिभास हो रहा है वह अमिथ्या है या मिथ्या ? याने अनुमानमें जो अङ्ग भेद प्रतिभास हो रहा है वह सच है या झूठ ? यदि कहो कि यह भेद प्रतिभास तो सत्य है, अनुमानमें यह पक्ष है, यह हेतु है, यह दृष्टांत है । इस प्रकारका जो भेद प्रतिभास है वह तो सत्य है मिथ्या नहीं, तो अब देख लीजिए कि इस हीके साथ हेतु में व्यभिचार आ गया । याने यहां अनुमान प्रयोगमें जो भेद प्रतिभास हेतु देकर प्रत्यक्ष आदिकको मिथ्या कहा है लेकिन स्वयं अनुमान प्रयोगमें जो पक्ष हेतु दृष्टांत भेदका प्रतिभास हो रहा है यह सच मान लिया गया तो यहां भेद प्रतिभास हेतु तो पाया गया पर मिथ्यात्व साध्य नहीं पाया गया । तो इस ही अनुमानमें हेतु दूषित हो जाता है । यदि कहो कि अनुमान प्रयोगमें बताया गया पत्र, हेतु दृष्टांत आदिकका भेद प्रतिभास मिथ्या है तो ऐसे मिथ्या प्रतिभाससे, मिथ्या अनुमानसे साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती । तो यों भी प्रत्यक्ष आदिकको मिथ्या सिद्ध न कर सके ।

पराभ्युपगममात्रसे भी पक्ष हेतु आदिक भेद प्रतिभासको सच मानने पर भेदप्रतिभासके तथ्यकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि अपुमानमें जो पक्ष हेतु दृष्टांत आदिकका भेद प्रतिभास हो रहा है वह दूसरोंने माना है, तो दूसरोंके माननेकी दृष्टिसे सच है और इस प्रकारके उस सच भेद प्रतिभास वाले अनुमानके द्वारा सिद्ध हो जायगा कि प्रत्यक्ष आदिक मिथ्या हैं । इसके उत्तरमें कहते हैं कि तुमने दूसरोंकी मान्यताके आधारसे भेद प्रतिभासको सच कहा तो कह लो । पर अपनी मान्यतासे तो सच न रहा और फिर यहाँ देखिए कि यह दूसरोंकी मान्यता है यह हमारी मान्यता है यह भेद प्रतिभास भी है कि नहीं है । तो इसमें ही व्यभिचार आ गया कि देखो भेद प्रतिभास तो हो रहा है, पर यह बात मिथ्या नहीं है । यह मेरी मान्यता है यह दूसरेकी मान्यता है, यह भेद भी सच नजर आ रहा है । यदि कहो कि यह मेरी मान्यता है यह दूसरेकी तो यह भेद प्रतिभास भी दूसरेकी मान्यता से सच मान लिया जायगा । और फिर दोष न रहेगा । तो उत्तरमें कहते हैं कि वही व्यभिचार यहां आयगा, और इस तरहसे तो अनवस्था दोष होगा, कहीं भी ठहर न सकेगा । हर जगह दूसरेकी मान्यतासे अमिथ्यापन है यह बात कहते जायेंगे तो इसकी धारा बनती जाती रहेगी ।

बाध्यबाधकभावके भेदसे द्वैतकी सिद्धि—अब यहां शंकाकार कहता है कि देखिए ! ब्रह्माद्वैत जो कि ज्ञानमात्र है, स्वतः सिद्ध है, उसमें जो क्रिया कारक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के भेद प्रत्यक्ष हो रहे हैं तो उनके बाधक प्रमाण मौजूद हैं इस कारण क्रिया कारक भेद भ्रांत है, विपरीत है ऐसी सिद्धि हो जायगी। और, इसी कारण फिर क्रिया कारक भेद प्रत्यक्ष हो रहे हैं उससे अद्वैतमें कोई विरोध न आयगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि ऐसा माननेपर बाध्य और बाधकका भेद तो सिद्ध हो ही गया। तो द्वैतको सिद्धि हो ही गई। कोई बाधक प्रमाण है इस कारण यह मान्यता बाध्य हो जाती है तो कोई बाध्य रहा कोई बाधक रहा, यह भेद तों यहां सिद्ध हो ही गया। यहां भी यह नहीं कह सकते कि दूसरोंने माना है इसलिए उन भेदप्रतिभासोंमें और प्रमाणमें बाध्य बाधकभाव मान लिया जायगा। और, दूसरोंके माननेसे कुछ भी समझलो पर परमार्थतः तो बाध्य बाधकभावका अभाव ही रहा दूसरोंके माननेसे ही तो वे माने गए, वहां वस्तुतः तो बाध्य बाधक भाव न रहा जब शंकाकार स्वयं माने तब तो बाध्यबाधक भावमें सच्चाई मानी जायगी, सो जब बाध्य बाधक भाव सिद्ध न हो सका तब जैसे प्रतिभासमात्रमें सत्यत्व है, प्रतिभासमात्रको सच मान लेते हो उसी प्रकार कारक आदिक रूपोंमें जो प्रतिभास विशेष हो रहा है वह भी सत्य सिद्ध हो जायगा। जब दूसरेके माननेसे बात मान ली जाती है तो क्रिया कारकका भेद दूसरे दार्शनिक मान ही तो रहे हैं फिर उसे सत्य सिद्ध क्यों नहीं कहते ? हो जायगा सत्य सिद्ध। इस प्रकार भी आपके अनुमानमें निर्दोषता न रहेगी। उस कारण यह सिद्ध है कि पुरुषाद्वैत, ब्रह्माद्वैतका एकान्ततः प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध ही है और इस अद्वैत एकांतमें केवल यही दूषण नहीं है अन्य भी है जिन्हें कि आचार्यदेव बतलाते हैं :

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्याऽविद्याद्वयं न स्याद्बन्धमोक्षद्वयं तथा ॥ २५ ॥

अद्वैतकान्ताग्रहमें कर्मद्वैत, फलद्वैत, लोकद्वैत, ज्ञान अज्ञान, बन्ध मोक्षादि की असिद्धिका प्रसङ्ग—अद्वैतका एकांत माननेपर न तो कार्यद्वैत सिद्ध होगा कि ये पुण्य कर्म हैं, ये पापकर्म हैं, ये लौकिक कर्म हैं ये अलौकिक कर्म हैं। यों न तो किसी प्रकारका कर्मद्वैत सिद्ध होगा और न फलद्वैत सिद्ध होगा कि यह तो अच्छा फल है और यह बुरा फल है यह श्रेयस्कर है, यह विनाशकर है, ऐसा फलभेद भी सिद्ध न होगा। और, न लोकद्वैत सिद्ध होगा, यह लोक परलोक भी सिद्ध न होगा कि यह लोक है, यह परलोक है और न ज्ञान अज्ञान सिद्ध होगा कि यह ज्ञानभरी बात है, यह अज्ञानभरी बात है। तो यों जब ये सभी सिद्ध न हो सके तो बंध और मोक्ष भी सिद्ध न होगा। और, यदि ये दो बातें मानी जाती हैं तब तो अद्वैत न रहा, द्वैत सिद्ध हो गया और यदि यह बात नहीं मानते तब तो धर्म किसलिए करना ? जब जीवको बंध नहीं है और न उस बंधसे छुटकारा होनेका कोई उपाय है तब यह

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मप्रवृत्ति, प्रभुभक्ति, तत्त्वज्ञान, ध्यान साधना आदि ये सब किसलिए कराये जायेंगे ? ये सब व्यर्थ हो जायेंगे। तब सब कुछ लोकमें एक मनचली वृत्ति बन जायगी। इस कारण यह मानना ही होगा कि यह सब व्यवस्था है और जीव अनन्त हैं। उन सब जीवोंका इस समय बंध सङ्कट लग रहा है तो बंध सङ्कटसे मुक्त होनेके लिए तत्त्वज्ञान यथार्थ श्रद्धान और सब प्रकारकी धर्मवृत्ति करना आवश्यक है, अद्वैत एकान्तमें ये बातें कुछ नहीं सिद्ध हो सकतीं, अतः अद्वैत एकांत प्रत्यक्ष आदिसे विरुद्ध है।

अद्वैताग्रहमें पुण्य पाप कर्म फलकी सिद्धिकी अशक्यता—शंकाकारके सिद्धांत के अनुसार भी कर्म दो प्रकारके होते हैं—एक लौकिककर्म, दूसरे वैदिककर्म। खेती, रोजिगार आदिक तो लौकिक कर्म कहलाते हैं और जो नित्य कर्तव्य हैं और नैमित्तिक अनुष्ठान हैं वे वैदिक कर्म कहलाते हैं। जब अद्वैतका एकान्त कर दिया जाय तो ये दो प्रकारके कर्म कहांसे सिद्ध होंगे ? कर्म इस प्रकार भी दो तरहके माने गये हैं कि कोई कुशल कर्म हैं, कोई अकुशल कर्म हैं अर्थात् शुभ और अशुभ दो प्रकारके कर्म हुआ करते हैं। जैसे दया दान आदिक कुशल कर्म कहलाते हैं और पाप, हिंसा, झूठ आदिक अकुशल कर्म कहलाते हैं। जब अद्वैतका ही एकांत मान लिया गया तो ये दो प्रकारके कर्म कहांसे सिद्ध होंगे ? कर्म इस तरह दो माने गए हैं—कोई पुण्य कर्म है, कोई पाप कर्म है। जिसके उदयमें जीव सुखी होता है वह पुण्य कर्म है और जिस के उदयमें जीवको दुःख होता है वह पापकर्म है। तो इस प्रकार दो तरहके कर्मोंकी व्यवस्था अद्वैत एकांतमें किस तरह बनेगी ? तो जब कर्म दो प्रकारके सिद्ध नहीं होते तब दो प्रकारके फल भी सिद्ध नहीं हो सकते। याने प्रशस्त फल और अप्रशस्त फल नहीं बन सकते। जिसमें विघ्न भरे हों, आकुलता भरी हो ऐसा फल भी सिद्ध कैसे होगा ? और जहां सुख भरा है, स्वर्गादिक है, वह फल भी कहांसे सिद्ध होगा, क्योंकि जब कारण नहीं माना गया तो कार्यकी उत्पत्ति कहांसे हो जायगी ? कारण है पुण्य-पाप कर्म। कर्म जब नहीं माने गए या सिद्ध नहीं होते तो दो प्रकारके फल-रूप कार्य कैसे बन सकेंगे ? और जब न कर्म सिद्ध हुए न फल सिद्ध हुआ तो ये इह लोक और परलोक ऐसे दो प्रकारके लोक भी कहांसे सिद्ध होंगे ?

द्वैतकी अविद्योदितता व अद्वैतकी तात्विकताका शङ्काकार द्वारा कथन—शङ्काकार कहता है कि दो प्रकारके कर्म होना अथवा फल होना या लोक परलोक होना ये सभीके सभी अनादि अविद्यासे दिखाये जाते हैं। अविद्याके कारण ही ये दो प्रकार बन रहे हैं, इस कारण अद्वैत माननेपर ये कर्मादिक परमार्थतः नहीं बनते तो न बनें और जहां बन रहे हैं वह सब अविद्याका क्षेत्र है, इस कारण अद्वैत सिद्धांतमें कोई बाधा नहीं आती। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि जब धर्म और अधर्म ये दोनों ही नहीं रहते तो विद्या और अविद्या ये दो कहांसे सम्भव होंगे ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मका प्रताप है विद्या और अधर्मका प्रताप है अविद्या ! तो कारण ही जब नहीं रहता तो विद्या अविद्यारूप कार्य भी कहांसे होगा ? बंध मोक्षकी तरह। जैसे बंध और मोक्ष भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं, जब कि धर्म और अधर्म नहीं मानते ! शङ्काकार कहता है कि पूर्वकालीन अविद्याके उदयसे ही विद्या और अविद्या ये दो तत्त्व सिद्ध हो जायेंगे, बंध और मोक्ष ये दो सिद्ध हो जायेंगे, परमार्थतः तो विद्या अविद्या बंध मोक्ष आदिक कुछ भी द्वैत नहीं हैं। कहा भी है आगममें कि न बंध है, न मोक्ष है, यही परमार्थता है, इस कारणसे ये दो बातें परमार्थताकी दृष्टिमें नहीं हैं। इनका परमार्थपनेका रूप नहीं दिया गया है। ये सब अविद्याके कारणसे हुआ करते हैं। यों प्रतिभास मात्र एक परब्रह्म ही वास्तविक है।

पुण्यपापसुखदुःखादि विशेषरहित तत्त्वकी अनाश्रयणीयता बताते हुए उक्त शङ्काका समाधान-उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन यों युक्तिसङ्गत नहीं है कि यदि आगमकी दुहाई देनेसे अथवा अन्य बाधित युक्तियोंसे तत्त्वको सिद्ध किया जाय तो दूसरोंके आगममें कहा गया नैरात्म्य तत्त्व भी सही बन जायगा। क्योंकि नैरात्म्य और परमब्रह्मकी कल्पना ही तो की गई है। तो जैसे परम ब्रह्मकी कल्पनाको निष्फल नहीं कहते ऐसे ही नैरात्म्यकी कल्पना भी निष्फल न रहेगी। सभी लोग कुछ न कुछ फलका उद्देश्य करके ही प्रवृत्ति किया करते हैं, चाहे वह प्रमाणसे विरुद्ध हो, ऐसा चाहे अद्वैत माना गया हो अथवा सर्वथाद्वैत माना गया हो, जो कुछ भी है, लोग अपनी बुद्धि द्वारा कोई न कोई फलका उद्देश्य करके ही मानते हैं अन्यथा अर्थात् फलके बिना किसीके भी उसके प्रति प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। विषयभूत तो इसीको कहते हैं कि फलकी प्राप्तिके लिए प्रवृत्ति हुआ करती है। तो पुण्य-पाप सुख-दुःख, इहलोक-परलोक, विद्या-अविद्या, बंध-मोक्ष जब ये कोई विशेष नहीं माने गए तो ऐसे तत्त्वका कौन बुद्धिमान श्रद्धान कर लेगा ? तो जैसे वेदांतवादियोंने नैरात्म्य दर्शनको आश्रयके योग्य नहीं बताया, क्योंकि वहां पुण्य-पाप आदिक व्यवस्था नहीं बनती है। तो इसी तरह अद्वैत भी आश्रय करने योग्य न होगा क्योंकि यहां भी पुण्य-पाप आदिककी व्यवस्था नहीं बनती। इस कारण जो बुद्धिमान लोग हैं उनके द्वारा आश्रय करने योग्य यह अद्वैत भी न रहा। कोई यदि ऐसी मनमें शङ्का रखे कि उस अद्वैतके जाननेकी इच्छा ही फल हो जायगी, सो यह भी बात बुद्धिमानोंके क्षेत्रमें युक्त नहीं है, उसकी जिज्ञासा भी श्रेयस्कर नहीं है। जिसमें कोई फल ही नहीं है, प्रयोजन कुछ न हो उसकी जिज्ञासासे लाभ क्या है ?

शङ्काकार द्वारा ब्रह्माद्वैतकी अनुमान प्रयोग द्वारा सिद्धिका आयोजन अब यहां शङ्काकार कहता है कि देखिये ! ब्रह्माद्वैत तत्त्व प्रमाणके विरुद्ध होनेसे ही कल्पित किया गया है कि यह कथन सत्य नहीं है क्योंकि उस ब्रह्माद्वैतकी अनुमान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयोगसे सिद्धि है। और आगम प्रमाणसे भी सिद्धि है। जैसे अनुमान प्रयोग है कि जो प्रतिभासका समानाधिकरण है, अन्तरङ्ग वस्तु हो, वहिरङ्ग वस्तु हो, अंतरङ्ग वस्तु तो ज्ञान है, वहिरङ्ग वस्तु यह सब चराचर जगत है। तो सभी कुछ जो प्रतिभासका समानाधिकरण हो अर्थात् जिन जिनका प्रतिभासका एक ही आधार है, वह सब प्रतिभासके अन्तरमें ही प्रविष्ट है। जैसे कि प्रतिभासस्वरूप। प्रतिभासका स्वरूप याने ज्ञानस्वरूप ज्ञानमें ही तो प्रविष्ट है, वह ज्ञानस्वरूप ज्ञानसे कुछ न्यारा है क्या ? तो जैसे ज्ञानस्वरूपका आधार ज्ञान है तो वह ज्ञानसे अलग नहीं है। इसी प्रकार सब पदार्थोंके प्रतिभासका आधार यह ज्ञान है इसलिए सब कुछ इस प्रतिभाससे बाहर नहीं है। इस हेतुसे परम ब्रह्मकी सिद्धि हो जायगी। क्योंकि सब कुछ प्रतिभासका समानाधिकरण दिख रहा है। और, यहां यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि सुख प्रतिभासमें आ रहा, रूप प्रतिभासमें आ रहा। ऐसा सभी लोगके चित्त में प्रतिभाससमानाधिकरणत्वकी प्रतीति हो रही है, अन्यथा अर्थात् यदि प्रतिभासका समानाधिकरणपना न हो जैसे कि सुख प्रतिभासमें आ रहा है ऐसे ह रूप प्रतिभासमें आ रहा है। ऐसे प्रतिभासके यदि समानाधिकरण न हों तो उसका सद्भाव ही सिद्ध न हो सकेगा। अप्रतिभासमान पदार्थका सद्भाव कोई मान बैठे तो सभी लोगों के मनमें जो कुछ कल्पना हुई वह सब सिद्ध हो जायगी। फिर कोई भी असत् न रहेगा। जिसने कि मनोरथ किया हो कोई अश्वविषाणकी ही भावना रख रहा हो, मनोरथ कर रहा हो तो वह भी सत् हो जायगा, क्योंकि अब तो यह मान लिया कि प्रतिभास न भी हो तब भी उसका सद्भाव है। इसमें आपत्ति जब आती है तो यह मान लेना चाहिए कि जिसका प्रतिभास है वे एक प्रतिभासमें प्रविष्ट हो गए हैं। यों एक परमब्रह्मकी सिद्धि होती है।

प्रतिभास्य व प्रतिभासमें भेद सिद्ध करके प्रतिभाससमानाधिकरणत्व हेतुको असिद्धि सिद्ध करनेकी अशक्यताका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—यहां यदि स्याद्वादी आदिक कोई दार्शनिक ऐसा कहे कि देखिये ! प्रतिभाससे व्यतिरिक्त प्रतिभास्य अर्थका अन्तरंग अथवा बहिरंग उपचारसे प्रतिभासके समानाधिकरणपने की व्यवस्था होनेसे ही सिद्ध हो गया कि प्रतिभासस्वरूपमें प्रतिभास समानिकरणता मुख्य है इस कारण प्रतिभास समानाधिकरणताकी मुख्यता व गौणताकी विधि होनेसे प्रतिभासभेद सिद्ध हो जाता है सो यह तथ्य हेतुको असिद्ध कर देता है। इसके उत्तर में ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि ऐसी आशंका न करना चाहिए, क्योंकि प्रतिभास्य और प्रतिभासमें प्रतिभास्य प्रतिभासकभाव नहीं बनता है कोई प्रतिभास्य भाव वाले हों, कोई प्रतिभासवाले ऐसी द्विविधाकी उत्पत्ति नहीं होती, अब यहां कोई दार्शनिक यदि यह आशंका रखे कि प्रतिभासका कारण होनेसे अर्थप्रतिभास्य कहलाता है तब यहां द्वैत तो बन ही गया। एक प्रतिभास है अन्य प्रतिभास्य है, इस तरह द्वैत हो जानेसे फिर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अद्वैत न टिकेता। इसके उत्तरमें अद्वैतवादी कहते हैं कि देखिये! प्रतिभासमात्र तो अहेतुक है उसका कोई हेतु नहीं बन सकता है। प्रतिभासमात्र अहेतुक है यह बात इस कारण सिद्ध होती है कि प्रतिभासमात्र अकादाचित्क है, मायने कभी हुआ हो ऐसा नहीं है प्रतिभासमात्र, किंतु वह अनादिनिधन है, नित्य है, इस कारणसे प्रतिभासमात्र अहेतुक है, किसी हेतुसे उत्पन्न हुआ नहीं है। यदि प्रतिभासमात्रको किसी हेतुसे उत्पन्न हुआ मान लिया जायगा तो फिर कभी भी प्रतिभासका अभाव हो जाने का प्रसङ्ग आ जावेगा। किंतु ऐसा है नहीं, प्रतिभासका कभी अभाव न था, न है, न होगा।

प्रतिभासावलम्बनत्व हेतुसे प्रतिभास्य अर्थकी सिद्धि करनेकी अशक्यताका शकाकार द्वारा प्रतिपादन—यदि जैन आदिक दार्शनिक यह कहें कि जो प्रतिभासमें आया हुआ अर्थ है, वह अर्थ है ही, क्योंकि प्रतिभासका आलम्बन होनेसे, एक प्रतिभास है, एक प्रतिभासका आलम्बन भूत पदार्थ है सो प्रतिभास अर्थ तो न्यारा है ही। तो इसके उत्तरमें सुनो! वेदांतवादी कह रहे हैं कि यदि प्रतिभासका आलम्बनपना होनेसे प्रतिभास्य अर्थ कोई मान लिया जाय तो बतलाओ कि प्रतिभास्यका अर्थ, प्रतिभासका आलम्बन किस प्रकारसे होता है, उसका कारण बतलाओ कि जिस से प्रतिभास्य अर्थमें प्रतिभासका आलम्बनपना आ जाय! यदि कहो कि प्रतिभास्य होनेसे प्रतिभास्य अर्थ प्रतिभासका आलम्बनभूत है, तो ऐसे कथनमें इतरेतराश्रय दोष हो जायगा। जब प्रतिभास सिद्ध हो ले तब तो प्रतिभासका आलम्बनपनां सिद्ध होगा, और जब प्रतिभासका आलम्बनपना सिद्ध हो जाय पदार्थमें तो पदार्थ प्रतिभास्य सिद्ध हो जायगा। इस तरह इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। अब प्रतिभास्य अर्थ कोई अलग हो सो नहीं, किंतु प्रतिभासके अन्तः ही प्रविष्ट है। यदि कोई दार्शनिक यह कहे कि प्रतिभास्य अर्थ यों सिद्ध हो जायगा कि उसमें प्रतिभासका आलम्बन लेनेकी योग्यता है तो यों प्रतिभासके आलम्बनपनेके योग्य होनेके कारण प्रतिभास्य अर्थ माना जायगा। तो उसका निष्कर्ष यह निकलेगा कि प्रतिभास्य प्रतिभास स्वरूप ही है। जो प्रतिभासमें आया अर्थ है वह प्रतिभास स्वरूप हुआ, उससे भिन्न द्वितीय पदार्थ नहीं है, क्योंकि प्रतिभास स्वरूप हीमें वास्तवमें प्रतिभासका आलम्बनपना बन सकता है। प्रतिभासके मायने है एक जानकारी! सामान्य जानकारीका आलम्बन क्या? वस्तुतः प्रतिभास ही है, क्योंकि सभी जगत प्रतिभासमें ही स्वरूपकी आलम्बनता है। स्वरूप ही जिसका आलम्बन है ऐसा ही तो यह प्रतिभास है। प्रतिभासने किसका सहारा लिया? अपने स्वरूपका सहारा लिया। तो प्रतिभासके आलम्बनपनेकी योग्यतासे प्रतिभास्य अर्थ माननेका अर्थ यह हुआ कि सब प्रतिभास्य स्वरूप ही है।

प्रतिभाससमानाधिकरणत्व हेतुकी असिद्धता, विरुद्धता, अनैकान्तिकता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न होनेसे अनुमानके द्वारा तथा आगववचनके द्वारा अद्वैत ब्रह्मकी सिद्धिका शंकाकारका कथन—उक्त प्रकार अब प्रतिभास समानाधिकरणपना किसी विषयके उपचारसे नहीं रहा, किंतु वह तो स्पष्ट रहा। इस कारण जो अनुमान बनाया गया है कि सब कुछ प्रतिभासस्वरूप ही है। क्योंकि प्रतिभासका समानाधिकरण होने से। प्रतिभासका जो आधार है वही आधार सर्व अर्थोंके प्रतिभासका है इस कारण से सब कुछ एक अद्वैतप्रतिभास ब्रह्म ही है। और जब विषयोंका उपचार प्रतिभास समानाधिकरणमें सिद्ध न हुआ तो हेतुमें अनैकांतिक दोष या विरोध दोष भी नहीं बनता और देखिए यह अनुमान प्रयोग विपक्षमें भी पाया जाता इस कारणसे यह निर्दोष ही प्रयोग है। कोई भी पदार्थ जो प्रतिभासके अन्दरमें न समाया हुआ हो वह प्रतिभासका समानाधिकरण हो ही नहीं सकता। इस कारण हेतु विपक्षमें नहीं पहुंचा, इस कारण किसी भी प्रकारका दोष अनुमानमें नहीं दिया जा सकता। कोई ऐसी भी शंका न करे कि इस हेतुमें आश्रयासिद्ध दोष है। सो आश्रयासिद्ध दोष नहीं हैं, क्योंकि जितने भी पदार्थ हैं वे सब परब्रह्मके ही आश्रय हैं और श्रुतियोंमें भी कहा है कि ब्रह्मशब्दसे सारी ही वस्तु कही जाती है। अर्थात् सर्व ब्रह्म ही है। यों निर्दोष हेतुसे अद्वैतकी सिद्धि होती ही है तथा उपनिषद वाक्योंसे भी यह सिद्ध होता है कि सब कुछ यह ब्रह्म ही है। तब जब सब प्रकारसे सिद्ध हो गया, उपनिषद वाक्यसे भी अद्वैत सिद्ध हो गया। तो उससे भी एक परब्रह्मकी सिद्धि हुई। अब उसमें भ्रांति न रखना चाहिए। यों अद्वैत तत्त्व निर्बाध है। इस प्रकार अद्वैतवादियोंने अपने पक्षकी सिद्धि की है। अब उस सर्वथा अद्वैतपनेको विकल्पका निराकरण करनेकी इच्छासे आचार्यदेव कारिका कह रहे हैं :

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद्द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विनासिद्धिर्द्वैतं वांमत्रतो न किम् ॥ २६॥

द्वैतके विरोधसे अद्वैतकी सिद्धिकी अशक्यता—शंकाकार यह बताए कि हेतुसे अद्वैतसाध्यकी सिद्धि होती है या हेतुके बिना ही अद्वैतकी सिद्धि होती है। यदि हेतुसे अद्वैतकी सिद्धि मानी जाती है तो इसमें हेतु और साध्य ये दो तो मानने ही पड़े तो वहां द्वैत सिद्ध हो ही गया। अगर हेतुसे अद्वैतकी सिद्धि कर रहे हैं तो हेतु और साध्य अर्थात् प्रतिभास समानाधिकरणत्व हेतु हुआ और अद्वैत साध्य हुआ तो यों दो भेद तो हो ही गए, एक ही कुछ तो न रहा। हेतु हुआ और साध्य हुआ। यदि हेतुके बिना ही अद्वैतकी सिद्धि करते हो तो केवल वह वचन मात्र ही तो रहा। बोल देनेको हेतुकी आवश्यकता तो न हुई। अगर केवल बोलने मात्रसे सिद्धि हो जाय तो दुनियाके लोग जो कुछ भी बोल जायें सब उनकी बात सिद्ध हो जायगी। तो चलो यों ही सही, तो वचनमात्रसे द्वैत ही क्यों नहीं मान लेते ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हेतु और साध्यकी द्वैतता न होनेसे अद्वैतकी असिद्धिके अभावकी शंका—शंकाकार कहता है कि देखिए! प्रतिभास समानाधिकरणत्व हेतुसे जब सभी पदार्थ प्रतिभासके अन्तः प्रविष्ट सिद्ध हो गए और इस तरह एक पुरुष ब्रह्म अद्वैतकी सिद्धि हो गई तो एक अद्वैतकी सिद्धि माननेपर भी हेतु और साध्यका द्वैतभाव न रहेगा अर्थात् हेतु तत्त्व हैं साध्य तत्त्व है, यों दो कोई प्रथक तत्त्व हैं, ऐसी द्वैतता न रहेगी क्योंकि हेतु और साध्यमें तादात्म्य माना गया है। और यहां यह नहीं कह सकते कि तादात्म्य मान लेनेपर साध्य और साधनमें साध्य साधन भाव का विरोध हो जायगा। जब साध्य और साधन एक ब्रह्मस्वरूप मान लिए गए तब साध्य और साधन ये दो भाव न रहेंगे। यहाँ ऐसा भी नहीं कह सकते, कि हेतु व साध्यमें तादात्म्य होनेपर फिर साध्य साधन भाव नहीं बनेगा। देखिए तादात्म्य होने पर भी साध्य साधनभाव बन ही जाता है। जो लोग पदार्थको अनित्य सिद्ध करनेके लिए सत्त्व हेतुका प्रयोग करते हैं, सर्वं अनित्यं सत्त्वात, याने सब कुछ अनित्य है सत्त्व होनेसे। तो यहां सत्त्व और अनित्यपना इनमें भी तो तादात्म्य है, याने जिस पदार्थमें अनित्यता है उस ही पदार्थमें सत्त्व पाया जा रहा। सत्त्व कहीं अलग रहता हो, अनित्यत्व कहीं अलग रहता तो ऐसा तो नहीं है, इस कारणसे सत्त्व और अनित्यत्वमें तादात्म्य तो सिद्ध हो ही गया। अब जब तादात्म्य सिद्ध हो गया तो यहां भी कह सकेंगे कि अब इसमें साध्य साधनभावका विरोध हो जायगा। अब किसे कहेंगे साध्य और किसे कहेंगे साधन? यदि वे दार्शनिक यह कहें कि कल्पना भेदसे ही साध्य साधन धर्मका भेद मान लिया जाता है। तो वेदांतवादी भी यह कह सकते हैं तो फिर प्रकृत अनुमानमें भीं अविद्याके उदयसे हेतु और साध्यकी कल्पना की गई है। उनके भीं साध्य साधन भावका विघात न होगा। जैसे कि क्षणिकवादी आदिक दार्शनिक लोग साध्य साधन धर्मका भेद कल्पनासे मानकर भी साध्य साधन भावकी व्यवस्था बनाते हैं ऐसे ही यहां अद्वैतवादमें भी अविद्यासे हेतु और साध्यकी कल्पना करके उनकी व्यवस्था बनायी जा सकती है। क्योंकि क्षणिकवादियोंके द्वारा मानते गए कल्पनाभेदसे जो साध्य साधन भावकी सिद्धि की है ऐसे ही अविद्याके कारण कल्पित साध्य साधन भावकी सिद्धि अद्वैतवादमें भी हो जायगी।

हेतु और साध्यमें सर्वथा तादात्म्य सिद्ध न होनेसे हेतुसे अद्वैत सिद्धि की असंगतता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका उक्त कथन संगत नहीं है, क्योंकि शब्दादिकमें सत्त्व और अनित्यत्वका भी कथंचित् वह तादात्म्य है, सर्वथा तादात्म्य नहीं सिद्ध होता। जैसे अनुमान प्रयोग किया कि शब्द अनित्य है सत्त्व होनेसे तो यहां अनित्यत्व और सत्त्व ये दोनों ही शब्दमें हैं। इस कारणसे उनका कथंचित् तादात्म्य हैं, एक धर्मीमें दोनों धर्म पाए जाते हैं इस कारणसे तादात्म्य है किन्तु सर्वथा तादात्म्य नहीं माना जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता। यदि सर्वथा तादात्म्य मान लिया जायगा तो वहां साध्य साधन भावका विरोध हो जायगा और फिर असिद्ध उदाहरण न कहला सकेगा। जैसे कि वेदांतवादियौंने अपने अनुमान प्रयोगमें जो प्रतिभास स्वरूपका उदाहरण दिया है यह भी कथंचित् तादात्म्यरूपसे रह रहा है। सर्वथा तादात्म्यरूपसे नहीं है, अतः ऐसा असिद्ध उदाहरण साध्यकी सिद्धि करानेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि इसमें अतिप्रसंग हो जायगा। अन्वय दृष्टांत जब कहा जा रहा हो तो वहां व्यतिरेक दृष्टांत भी वाच्य बन जायगा। इस कारण असिद्ध उदाहरण साध्यके सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है। अतएव प्रतिभास समानाधिकरणत्व हेतुसे अद्वैत तत्त्वकी सिद्धि नहीं हो सकती।

आगमसे अद्वैतकी सिद्धिकी अशक्यता–यहां शङ्काकार कहता है कि अद्वैत ब्रह्मकी सिद्धि हेतुके बिना ही आगममात्रसे हो जायगी। हेतुवोंपर कुछ भी ध्यान न दे, आगममें तो लिखा है कि एक सर्वाद्वैत ब्रह्म है, इस आगमसे तो अद्वैत परम पुरुष ब्रह्मकी सिद्धि हो जाती है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि आगमसे अद्वैतकी सिद्धि करनेमें कमसे कम इतना द्वैत तो मानना ही पडेगा कि कोई अद्वैत है और कोई आगम है। अद्वैतका सिद्ध करने वाला आगम भी तो साधक है और अद्वैत ब्रह्म यह साध्य किया जा रहा है तो इस पद्धतिमें भी द्वैतभावका प्रसंग तो आ ही गया। यदि शंकाकार यह कहै कि आगम भी तो अद्वैत परमब्रह्म स्वभाव है आगम कोई ब्रह्मसे भिन्न नहीं है जिससे कि द्वैत मान लिया जाय। तो इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है स्पष्ट कि जब ब्रह्मसे आगम अभिन्न रहा तो जैसे ब्रह्म असिद्ध है उसीकी सिद्धिके लिए तो प्रयत्न किया जा रहा है, तो ब्रह्मसे हुआ आगम अभिन्न तो इसका अर्थ यह निकला कि ब्रह्मकी तरह आगम भी असिद्ध है। अब देखिए–जो सर्वथा असिद्धस्वभाव है वह सिद्ध तो नहीं कहा जा सकता। ब्रह्म भी असिद्धस्वभाव वाला है और आगम भी असिद्ध स्वभाव वाला है। तो उनमेंसे किसी को भी सिद्ध नहीं कहा जा सकता। और, अगर इन दोनोंमेंसे किसीको सिद्ध कहते हो। जैसे मानो आगम तो सिद्ध है और उससे ब्रह्माद्वैतकी सिद्धि की जाती है कि आगम तो सिद्ध है और वह अद्वैत ब्रह्म असिद्ध है तो यों सिद्ध और असिद्धका भेद तो आ गया। लो वही द्वैत बन गया कि कोई सिद्ध है और कोई असिद्ध है। तो आगमसे भी हेतुके बिना अद्वैत ब्रह्मकी सिद्धि नही की जा सकती।

प्रमाणसे असिद्ध तत्त्वकी अप्रतिपत्तव्यता–जब अनुमानसे अथवा आगमसे उस अद्वैत वस्तुकी सिद्धि न हो सकी तो समझ लीजिए कि अब जो असिद्ध है, हित चाहने वालेको उसके जाननेकी आवश्यकता नहीं है। अथवा जो अपना अहित, अकल्याण करना नहीं चाहते हैं वे असिद्धको जानने क्यों चलेंगे? तब इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

असिद्ध अद्वैतकी जिज्ञासा भी न करना चाहिए। जैसे कि शून्यताका एकांत किसी कल्याणार्थीके लिए जानने योग्य नहीं है, इसी प्रकार यह अद्वैत भी असिद्ध है। तो असिद्धको जाननेका प्रयोजन क्या है ? यहां हेतु असिद्ध नहीं कहा जा सकता, "अद्वैत असिद्ध है, अद्वैत होनेसे" इसमें जो अद्वैत होना हेतु बताया है वह हेतु असिद्ध नहीं है। क्योंकि प्रतिभासाद्वैतकी अनुमान और आगम किसीसे भी सिद्धि नहीं बनती है। शंकाकार कहता है कि अनुमानसे तो उसकी सिद्धि हो जाती है, अद्वैत साधक अनुमानमें हेतु दिया ही गया है प्रतिभास समानाधिकरणपना होना। प्रतिभास समाधिकरणका अर्थ है कि एक ही आधार प्रतिभासका है और सर्व पदार्थोंका है। तो जब आधार एक प्रतिभास ही रहा तो सर्व कुछ प्रतिभास स्वरूप बन गया। तो यों प्रतिभास समानाधिकरणपना होनेसे तो अद्वैतकी सिद्धि हो जायगी। इसके उत्तरमें कहते हैं कि वह प्रतिभास समानाधिकरणपना तो विरुद्ध है। आप इस हेतुसे अद्वैतको सिद्ध करना चाहते हैं और हो जाता है इस ही हेतुसे द्वैत सिद्ध। देखिये ! प्रतिभास और प्रतिभासका विषय इन दोनोंमें कथंचित् भेद होगा तभी तो समानाधिकरणपना जाना जा सकेगा। एक आधारमें दो पदार्थ रहते हैं इसलिए उस आधारको समानाधिकरण मान लिया तो जब दो सिद्ध हों और दो आधेय रहें तभी तो समानाधिकरणका स्वरूप बनता है। तो कथंचित् भेद माने बिना समानाधिकरणपना नहीं बन सकता। इस कारण प्रतिभासके विषयभूत जो प्रतिभास्य पदार्थ हैं वे प्रतिभासके अन्दरमें ही प्रविष्ट हो गए, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। देखिये जब यह कहते हैं कि शुक्ल है पट अर्थात् यह कपड़ा सफेद है तो यहाँ दो बातें जो कही गई हैं सफेद और कपड़ा तो इन दोनोंमें यदि सर्वथा तादात्म्य मान लिया जाय तो समानाधिकरण्य नहीं बन सकता। जब गुण और द्रव्य ये दो ही न रहे, एक हो गए तो एकमें समानाधिकरणकी बात क्या कही जा सकती है। समानत्व तो कमसे कम दो वस्तुवें हों तभी तो बताया जा सकता कि इसका भी अधिकरण यह है और अमुकका भी अधिकरण यह है। तो समानाधिकरणत्व सर्वथा तादात्म्यमें बन नहीं सकता, जैसे कि सर्वथाभेदमें समानाधिकरण नहीं बनता। जो अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं जैसे हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत जुदी-जुदी जगहमें हैं तो वहां आधार एक कहां रहेगा ? उसका जैसे सर्वथा भेद माननेपर समानाधिकरणपना नहीं बनता उसी प्रकार सर्वथा तादात्म्य माननेपर भी समानाधिकरणपना नहीं बनता। तब मानना ही होगा कि प्रतिभास्य पदार्थ भिन्न है और प्रतिभास भिन्न है।

प्रतिभाससमानाधिकरणत्व हेतुसे भी द्वैतकी सिद्धि—प्रतिभास्वरूप प्रतिभासता है, ऐसा जो शंकाकारका कथन है इसमें भी सर्वथा तादात्म्य नहीं है। प्रतिभास और प्रतिभासका स्वरूप तो इसमें लक्ष्य लक्षणका भेद तो हो ही

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया, प्रतिभास लक्ष्य वन गया, स्वरूप लक्षण बन गया। तो किसी प्रकार वहां भी भेद सिद्ध होता है, यों प्रतिभासस्वरूप प्रतिभासता है, इस कथनमें भी प्रतिभास प्रतिभासके स्वरूपका सर्वथा तादात्म्य नहीं कहा जा सकता। देखिए प्रतिभास साधारण और असाधारण धर्मका अधिकरण है। प्रतिभास मात्र जो सत्त्वादिक है यह तो साधारण धर्म है और जो ज्ञानस्वरूप है, अचेतन आदिक धर्म है वह असाधारण धर्म है। तो साधारण और असाधारण धर्मका आधारभूत तो माना है शङ्काकारने प्रतिभास, तो अब असाधारण धर्मरूप अपने स्वरूपसे अतिरिक्त ज्ञानका स्वरूप भी तो खुद है कुछ, वही कहलाता है स्वका असाधारण धर्म, तो असाधारण धर्मरूप स्वस्वरूपसे कथंचित् भेद तो उस प्रतिभासका प्रसिद्ध ही हो गया। तो सर्वथा अभेदसे भी समानाधिकरण बन नहीं सकता। जैसे स्वर्णमें स्वर्ण है तो अब इसमें समानाधिकरण की क्या बात ? अब यदि एक मान लिया तो समानाधिकरण नहीं बनता और यदि अत्यन्त प्रथक मान लिया जैसे कि हिमालय विन्ध्याचल तो इनका भी समानाधिकरणपना नहीं हो सकता। तब यहां यह निर्णय कर लेना चाहिए कि जो प्रतिभासमें समानाधिकरण है, प्रतिभासका समान एक आधारभूत है वह प्रतिभाससे कथंचित् भिन्न है, प्रतिभासका स्वरूप है एक ज्ञान स्वरूप और प्रतिभासमें है विरुद्ध अनेक धर्मोंका प्रतिभास। तो जैसे वहां भेद है, ज्ञानस्वरूप और जानकारी इनमें भेद है। जानकारीमें तो नाना पदार्थ आ रहे हैं, उन नाना आकारोंका परिज्ञान होता रहता है और जो ज्ञानस्वरूप है वह तो केवल प्रतिभास स्वरूप है। तो इसी प्रकार प्रतिभास और प्रतिभास स्वरूप ये परस्पर कथंचित् भिन्न हैं, जैसे कि स्वभाव प्रतिभास और सुख नीलादिक सभी पदार्थ समानाधिकरण मानते हैं। तो इस अनुमानसे तो अद्वैतसे विपरीत द्वैत ही सिद्ध हो गया। तो इस हेतुसे अद्वैत की सिद्धि नहीं की जा सकती। और फिर उस अद्वैतकी सिद्धिके लिए जो यह आगम वचन प्रस्तुत किया है कि सब कुछ यह ब्रह्म ही है। तो इस आगमसे भी द्वैतकी सिद्धि ही होगी अद्वैत सिद्ध न हो सकेगा, क्योंकि सब पदार्थ तो प्रसिद्ध हैं और वहां प्रसिद्ध सब पदार्थोंका अप्रसिद्ध ब्रह्मरूपसे विधान किया जा रहा, यह सब ब्रह्म है। प्रसिद्ध तो सब पदार्थ हैं और अप्रसिद्ध ब्रह्म है और उन सबको ब्रह्म रूपसे मनाया जा रहा है तो बतलाओ यहां द्वैत आ गया कि नहीं ? जो सर्वथा प्रसिद्ध है उसका आगमके द्वारा किसी अन्य प्रकारसे विधान नहीं बनाया जा सकता है। तो आगमसे अद्वैतकी सिद्धि है, इस कथनमें द्वैत ही सिद्ध हुआ और आगममें जो विषय वर्णित किया है कि अद्वैत ब्रह्म सब है तो सब और यह ब्रह्म इस प्रकार वहां द्वैतभाव सिद्ध हो ही जाता है।

आगमसे अद्वैतकी असिद्धि व द्वैतकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि किसी एक आत्मामें प्रसिद्ध एकमेकरूप ब्रह्मत्व तो है ही, जैसा कि सभी दार्शनिक समझ रहे हैं। अब उस किसी एक आत्मव्यक्तिकी असिद्धि एक स्वरूप ब्रह्मत्वका सर्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माओंमें और जो आत्मारूपसे माने गए हैं ऐसे अचेतन पदार्थोंमें जो विधान बनाया है यह सब एक ब्रह्मरूपसे है, इस प्रकारका जो निर्देश किया गया है तो उस आगमसे द्वैत मायाजालके आरोपका निराकरण किया जाता है, अतएव प्रसिद्ध ब्रह्मत्वका अन्य पदार्थोंमें भी विधान करना असंगत नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें कहते है कि किसी आत्मव्यक्तिमें प्रसिद्ध एक आत्मारूप ब्रह्मत्वका सब आत्माओंमें अनात्माओंमें विधान करके और द्वैत मायाजालके आरोपके निराकरणकी जो कल्पना की है सो ऐसे आगमसे भी यह तो सिद्ध हो ही गया कि कोई व्यवच्छेद है और कोई व्यवच्छेदक है। जिस आगमसे ब्रह्मतत्वकी साधना बतायी है उस आगमसे यह सिद्ध हो गया कि व्यवच्छेद्य तो ब्रह्म है अर्थात् इस द्वैत प्रपंचसे अलग कर दिया गया है और व्यवच्छेदक आगम है। आगमके माध्यमसे उस ब्रह्मस्वरूपको निराला दिखाया गया है। तो यों व्यवच्छेद्य व्यवच्छेदककी सद्भूतता सिद्ध होनेसे फिर अद्वैत सिद्ध कैसे कहा जायगा ? और भी देखिये—जो आगम बताया गया है वह आगम भी परमब्रह्म-स्वभावरूप मान लिया है तो भले ही आगमका भी परम ब्रह्म स्वभावरूप मानलें फिर भी उससे अद्वैतकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि स्वभाव और स्वभाववानमें एकांततः तादात्म्य नहीं कहा जा सकता, भेददृष्टिसे उसमें स्वभाव और स्वभाववानकी संज्ञा समझमें आती है।

स्वसम्वेदनकी पुरुषाद्वैतसाधनताका प्रतिक्षेप—शंकाकार कहता है कि आत्माका अपना स्वसम्वेदन ही अद्वैत पुरुषकी सिद्धि करनेमें समर्थ है। स्वसम्वेदन अर्थात् स्वमें जो अद्वैत है उसका जो सम्वेदन हो रहा है वह पुरुषाद्वैत साध्य करनेमें हेतु है। जिसका अनुमान प्रयोग यों कह सकते हैं कि अद्वैत परम ब्रह्म। है क्योंकि अद्वैतका सम्वेदन होनेसे। इस तरह परम पुरुषकी जो कि अद्वैत स्वरूप है, सिद्धि हो जायगी। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी सारहीन है, क्योंकि जितने दोष पूर्व शंकाकारके प्रयुक्त अनुमानमें दिए गए हैं वे सभी इसमें भी आते हैं। देखिए उस पुरुषद्वैतकी सिद्धि यदि साधनसे मान ली जाती है, स्वसम्वेदनको साधन बनाकर भी सही, तो इतना तो मानना होगा कि साधनसे यहां पुरुषाद्वैतकी सिद्धि की गई है तो लो साध्य और साधनका द्वैतपना यहां ही होगा, पुरुषाद्वैत साध्य है और स्व-सम्वेदन साधन है। अन्यथा अर्थात् साधनके बिना ही यदि अद्वैतकी सिद्धि वचन मात्रसे मान रहे हो ऐसे ही वचनमात्रसे द्वैतकी सिद्धि क्यों न हो जायगी। और वचन कुछ बोलने मात्रसे यदि इष्ट अर्थकी सिद्धि मान ली जाती है तो सभी दार्शनिकोंकी सिद्धि मान ली जाती है तो सभी दार्शनिकोंकी सभी बातें सिद्ध हो जायेंगी, क्योंकि अब तो बता रहे हैं अतएव सब सच है यह सिद्धांत बना डाला। और भी देखिए ! जो स्वसम्वेदन हेतु बताया गया है वह साधन आत्मासे यदि अभिन्न ही है तो वह साधन नहीं कहला सकता, क्योंकि साधन भी परम अद्वैतस्वरूप है। तो साधन

http://sahjanandvarnishastra.org/

पना फिर क्या रहा ? जैसे कि स्वसम्वेदनका साधन मान रहे हो तो साध्यको ही साधन क्यों नहीं मान लेते ? जो साध्य है वही साधन है यों तो अद्वैत बन गए। तो प्रकृत अनुमान और आगमकी तरह जैसे कि प्रतिभाससमानाधिकरणत्व हेतु दिया गया है उसकी तरह स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष भी अब साधन नहीं रह सकता, क्योंकि प्रथक तो कुछ है ही नहीं। और भी सुनो स्वतः सिद्ध है ब्रह्म, ऐसा माननेपर द्वैत भी स्वतः सिद्ध क्यों न हो जायगा। अब तो साधनकी आवश्यकता नहीं मानी गई और इस तरह तत्त्वशून्यताका दर्शन भी क्यों न स्वतःसिद्ध मान लिया जाय ? अथवा क्षणिक-वादका, नास्तिकताका सिद्धांत क्यों न परमार्थ मान लीजिए, क्योंकि अब तो अपने वचन मात्रसे ही मंतव्यकी सिद्धि की जा रही है। तो सभी दार्शनिकोंके सभी मनो-रथोंकी सिद्धि होना अनिवार्य हो जायगी।

अनिगम आगमसे प्रमाणविरुद्धत्वकी सिद्धिकी अशक्यता—उक्त प्रकार जब अद्वैत ब्रह्म अथवा केवल एक ही कुछ तत्त्व सिद्ध न हो सका तो आगममें जो वर्णन किया गया है अद्वैत सिद्धांतमें कि यह आत्मा एक सत् ब्रह्म है सो यह तद्रूप ब्रह्म है, यह आत्मा है इस तरह केवल मोहसे ही भेदरूप प्रतिभास हो रहा है और मोहसे ही कुछ दूसरा ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है, इस तरहसे निरीक्षण किया जाता है। शास्त्र तो एक पुरुषाद्वैतकी सिद्धि करनेमें ही निश्चित है। आदिक जो कथन है वह संगत नहीं बैठता है क्योंकि मोहको माना गया है अविद्यारूप। जिस मोहसे यह आत्मा है, यह ब्रह्म है, इस कथनको दूषित बताया जाता है वह मोह अविद्यारूप है वह अकिंचित् रूप है, उसका कोई स्वभाव नहीं माना गया है। तो वह भ्रमका कारण बन जाय सो कैसे बनेगा ? जो अकिंचित्स्वरूप है, स्वभाव रहित है वह विभ्रमका कारण नहीं बन सकता और किसी द्वितीयपनेके दर्शनके प्रति भी कारण नहीं बन सकता कि यह मोह किसी दूसरी चीजको दिखा दे। तो अविद्या यदि अवस्तु रूप है तो उससे न कोई भ्रम सिद्ध किया जा सकता है और न किसी द्वितीय का विधान बताया जा सकता है। यदि मोहको वस्तुरूप मानते हो तो लो द्वैतकी सिद्धि वहां ही हो गई। एक ब्रह्म है दूसरा मोह है। और जब द्वैत सिद्ध हो गया तो उससे ही भ्रम और कोई दूसरा है इसमें बाधा आयगी। तो मोहसे दूसरेको माननेकी बात सही न रही और फिर और भी सुनो—यह कथन कि जो शास्त्र है वह अद्वैत पुरुषके अर्थमें ही निश्चित् है, ऐसा कहनेमें भी तो द्वैतकी सिद्धि हो गई। शास्त्र है और पुरुष अद्वैत अर्थ है ये दो बातें हैं कि नहीं ? अगर इन दोनोंमें भेद न माना जाय तो साध्य साधन भाव नहीं बन सकता कि आगम तो साधक है और अद्वैत ब्रह्म वहां साध्य किया जा रहा है। सर्वथा अद्वैत तत्त्वके आग्रहविकल्पके निराकरणमें और भी सुनो !

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना ।
संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥ २७ ॥

प्रतिषेध्य पदार्थका अस्तित्व माने बिना कहीं उसके प्रतिषेधकी अशक्यता होनेसे द्वैतप्रतिषेधसे ही, अद्वैत शब्दसे ही द्वैतकी सिद्धि—द्वैतके बिना अद्वैत सिद्ध नहीं किया जा सकता, जैसे कि हेतुके बिना अहेतु सिद्ध नहीं किया जा सकता। जिसका प्रतिषेध किया जाता है, उस वस्तुका कहीं भी सत्त्व माने बिना किसी भी संज्ञावानका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। स्पष्ट भाव है कि जो यहाँ कहा अद्वैत याने द्वैत नहीं, तो जो नहीं है वह होगा तो कहीं ना कहीं ! जिसका निषेध किया जा रहा है। जैसे कहा जाय कि अश्व नहीं, तो इसका जो विधान है, अनश्वका जो कथन है वह तब ही तो सम्भव है जब कि अश्व है। जिसका निषेध किया है वह अस्तित्वमें तो है। भले ही कल्पनामें न हो, सामने न हो किसी परिस्थितिमें, उसका अभाव बताया जाता है, पर सर्वथा वह असत् हो सो बात नहीं। अद्वैत शब्द अपने प्रतिषेधके प्रतिपक्षीकी अपेक्षा रख रहा है, क्योंकि नञ्पूर्वक अखण्ड पद होनेसे अहेतुके कथनकी तरह ! जैसे कि अहेतु यह शब्द अपने अभिधेयके प्रतिपक्षीकी अपेक्षा रखता है अर्थात् हेतु नहीं है, ऐसा कथन उस हेतुकी अपेक्षा रखता है। क्या नहीं है? यह समझमें तो आना चाहिए ! तो इसी प्रकार अद्वैत शब्द भी अद्वैतके विरोधी परमार्थभूत द्वैतकी अपेक्षा रख रहा है ! क्योंकि नञ् विशेषणपूर्वक एक अखण्ड पद होनेसे। जो नञ्पूर्वक अखण्ड पद होगा वह अपने अभिधेयके प्रतिपक्षकी परमार्थतः अपेक्षा रखेगा। जैसे कि यह अहेतु शब्द अपने अभिधेयके प्रतिपक्षभूत परमार्थकी अपेक्षा रख रहा है। इस अनुमानका तात्पर्य यह है कि जब अद्वैत शब्द कहा तो उसमें निषेध किया द्वैतका। तो द्वैत हुए बिना अद्वैत शब्दका प्रयोग नहीं हो सकता। जैसे कि हेतु हुआ करता है तब ही तो किसी स्थानको हम अहेतु कह सकते हैं। इसमें दोष है अथवा विरोध है, इस कारण यह हेतु नहीं हो सकता। इस हेतुका निषेध हेतु है तब ही तो किया जा सकता है' यह न सही हेतु मगर हेतु हुआ तो करता है, इसी प्रकार द्वैत यदि न हो तो अद्वैत शब्दका प्रयोग भी नहीं हो सकता है।

नञ्पूर्वकाखण्डपद हेतुकी अव्यभिचारिता होनेसे अद्वैतपद प्रयोगमें ही द्वैतके अस्तित्वकी ध्वनि—यहां शङ्काकार कहता है कि इस हेतुका "अनेकान्त" शब्दके द्वारा व्यभिचार हो जायगा। जैसे कहा अनेकान्त। तो नञ्पूर्वक शब्द है ना यह ? एकान्त नहीं, तो अनेकान्त शब्द भी अपने अभिधेयके प्रतिपक्षभूत एकान्तकी अपेक्षा करने लगेगा अर्थात् उससे एकान्तकी सिद्धि हो जायगी। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका संगत नहीं है। क्योंकि अनेकान्त शब्द भी सम्यक् एकान्तके बिना उपपन्न नहीं हैं। सम्यक् एकान्त माना ही गया है जहाँ किसी एक धर्मको प्रधान रूपसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहा जाय और अन्य धर्मोंका गौण रूपसे संकेत रहे तो उसे सम्यक् एकान्त कहते हैं। इसका एकान्त न हो तो अनेकान्त शब्दका भी प्रयोग नहीं हो सकता, इस कारण इस हेतुका 'अनेकान्त' शब्दके द्वारा व्यभिचार बताना युक्तिसंगत नहीं हैं। यहां यह अनुमान बताया जा रहा है कि अद्वैत शब्द अपने अभिधेयके प्रतिपक्षभूत परमार्थकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि नञ्पूर्वक अखण्ड पद होनेसे। इस हेतुका अनेकान्तके साथ व्यभिचार नहीं होता, यह बात अभी बतायी गई है और इसी तरह यह भी समझना चाहिए कि आमाया आदिक शब्दोंमें भी व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि आमाया भी माया आदिकका अविनाभावी है। आमायाका अर्थ है माया कहीं। तो आमाया शब्द भी अपने अभिधेयके प्रतिपक्षभूत मायाकी अपेक्षा रखता है। अब इस हेतुमें किसीको यह आशंका न करना चाहिए कि केवल शब्दसे व्यभिचार आ जायगा, जिसमें नञ् शब्द न होगा ऐसे द्वैत और माया आदि शब्दोंसे व्यभिचार आ जायगा, क्योंकि द्वैत अद्वैतका अविनाभावी है यह तो मान नहीं रहे, क्योंकि अद्वैत तत्त्वका तो विरोध किया जा रहा है। तो इस शब्दोंके साथ व्यभिचार आ जायगा। सो उसके निराकरणमें यह जान लेना चाहिए कि यहां हेतु बताया गया है नञ्पूर्वक अखण्ड पद! द्वैत माया आदिक शब्दोंमें नञ् कहां लगा है ? नञ्का अर्थ है निषेध, 'अ' जिसका शेष रह जाता है। तो नञ्पूर्वक अखण्ड पद होना चाहिए, इसमें नञ्का ग्रहण किया गया है, इस कारण केवल शब्दोंसे व्यभिचार नहीं आ सकता। गौ, अश्वादिक भी पद हैं। उन अंशोंसे अखण्डका ग्रहण किया गया है, उसका एक देशांश हुआ ग, अश्, तो ये भी कोई अर्थ नहीं रखते, क्योंकि ये पदांश हैं।

नञपूर्वाखण्डपदत्व हेतुमें अखरविषाण आदि नञ्पूर्वनिकपदोंसे व्यभिचारका अभाव—यह भी समझ लेना चाहिए कि अखरविषाण आदिक शब्दोंसे भी नञ्पूर्वाखण्डपद हेतुमें व्यभिचार नहीं होता। अखरविषाणका अर्थ है खरविषाण न होना। तो खरविषाण नहीं है, इस अर्थको बताने वाला अखरविषाण शब्द कहीं खरविषाणका अविनाभावी न बन जायगा! लेकिन कोई शङ्काकार यहां अखरविषाण शब्दको व्यभिचार बताने लगे तो उसका यह कथन अयुक्त है, क्योंकि वहां एक अखंड पद नहीं है। यहाँ दो पद हैं—खर और विषाण। फिर दो पदोंके साथ नञ् समास लगा है, अतः अखरविषाण शब्दसे भी व्यभिचार नहीं आता। हाँ! अखर कहो, अविषाण कहो, तो यहाँ प्रतिपक्षकी सिद्धि है ही याने खर भी है, विषाण भी है। इस कारण यहाँ कुछ भी अतिप्रसंग नहीं आता, इसका कारण यह है कि नञ्पूर्वक अखण्डपद हेतु बताया गया है तो अखण्डपद विशेषण सहित नञ्का अर्थ है कि वह वस्तु प्रतिषेध कर रहा है। तो वस्तुके प्रतिषेध करनेकी कारणता अखण्डपद सहित नञ्में है, अन्य प्रकारसे नहीं है। जैसे कई पदोंको लगा दिया जाय उसमें भी नहीं है अथवा एक-एक वर्ण बोला जाय उसमें भी वस्तु प्रतिषेधकी कारणता नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अखण्डपद विशेषण वाले नञ्में कहीं भी अवस्तुके प्रतिषेधकी कारणता नहीं पायी जाती उससे तो वस्तुका ही प्रतिषेध किया जा सकेगा जैसे कि शंकाकारका यह कहना था कि अखरविषाण तो यहाँ नञ् शब्द लगा है तो उससे खरविषाणकी बात आना चाहिए सो खरविषाण तो अवस्तु है। उसकी प्रतिषेधकी कारणता अखण्डपद विशेषण वाले नञ्में नहीं है। क्योंकि अन्य पदोंसे सहित पदका विशेषण बन गया है वह नञ्। तो उस नञ्में अवस्तु प्रतिषेधकी कारणता नहीं प्रतीत होती है अखरविषाण आदिककी तरह। तो जब अनुमानमें बताये गये नञ्पूर्वक अखण्डपद हेतुका कहीं भी व्यभिचार सिद्ध न हो सका तो यह निर्णय करना चाहिए कि सभी जगह प्रतिषेध्यके बिना संज्ञावानका प्रतिषेध नहीं हो सकता है। अर्थात् जैसे अनश्व कहा, घोड़ा नहीं, तो इसका निष्कर्ष है कि प्रतिषेध्य अश्व है तब तो अनश्व शब्दका अर्थ बना। परंतु, खरविषाण तो कोई संज्ञावान वस्तु ही नहीं है जिससे कि उस सत्का कथंचित् पररूपकी अपेक्षासे प्रतिषेधका प्रसंग आ सके।

पुरुषाद्वैत सिद्धान्तमें अविद्याकी व्यवस्था अशक्य होनेके कारण परमार्थतः प्रतिषेधव्यवहारकी असंभवताकी शंकाकी अयुक्तता—शंकाकार कहता है कि देखिये ! पुरुषाद्वैतके सिद्धान्तमें परमार्थ दृष्टिसे प्रतिषेधका व्यवहार ही सम्भव नहीं है, किन्तु दूसरोंके द्वारा माने गए द्वैतका अनुमानादिकरूप परप्रसिद्ध न्यायसे ही अभाव सिद्ध किया जाता है। परमार्थतः अद्वैत ब्रह्मवादमें प्रतिषेधका व्यवहार नहीं है। चूंकि दूसरा दार्शनिक मानता है द्वैत, तो उनके यहाँ जो प्रसिद्ध द्वैत है उस द्वैतका परप्रसिद्ध अनुमान आदिकसे हीं अभाव सिद्ध किया जा रहा है। वस्तुतः प्रतिषेध व्यवहारका अवकाश ही पुरुषाद्वैतमें नहीं हैं और, यहाँ भी यह समझ लेना चाहिए कि जो स्व और परका विभाग बनाया है कि स्वका माना हुआ अद्वैत तत्त्व है, परका माना गया द्वैत तत्व है, तो यह स्व है यह पर है ऐसा भी जो भेद है वह भी तात्त्विक नहीं है, वह भी केवल कल्पनाकी बात है, क्योंकि स्व और परका विभाग अज्ञानके विनाशके आधीन है अर्थात् जहाँ अविद्याका फैलाव है, अविद्याका वातावरण है वहाँ ही स्व और परका विभाग है। परमार्थतः तो एक पुरुषाद्वैत तत्त्व है इस कारण प्रतिषेध व्यवहार वाली बात कहकर अद्वैत ब्रह्मकी सिद्धिमें कोई दोष नहीं कहा जा सकता। अब उक्त शंकामें समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह कथन युक्त नहीं है, क्योंकि पहिले तो अविद्याकी ही व्यवस्था बना लीजिए कि अविद्या कोई चीज है, जिसका माध्यम लेकर आप प्रत्येक प्रसिद्ध बातको मिथ्या बता रहे हैं तो अविद्याकी ही व्यवस्था नहीं बन सकती है।

अविद्याकी अवस्तुभूतताकी शंकाका समाधान—शंकाकार कहता है कि परमार्थकी अपेक्षा रखकर अविद्याकी व्यवस्था हम नहीं बनाते, क्योंकि अवस्तुभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अविद्यामें प्रमाणका व्यापार नहीं होता। जबमें अविद्या कोई वस्तु ही नहीं है तो अवस्तुका प्रमाण कैसे बनेगा, और अवस्तुमें प्रमाणका व्यापार भी कैसे रह सकेगा ? प्रमाणका व्याहार तो वस्तुमें होता। तो प्रमाण द्वारा प्रमेय तो वस्तु हुआ करता है। पर अविद्या तो वस्तु नहीं है। तो इस कारणसे परमार्थकी अपेक्षा लेकर अविद्याकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती। उक्त शंकाके समाधारमें कहते हैं कि ऐसा कहने वाला शंकाकार बुद्धिमान नहीं है कारण कि सर्व प्रमाणोंसे अतीत स्वभाव वाली अवस्तु है, ऐसा स्वयं स्वीकार किया है। अभी—अभी कहा गया ना कि अवस्तुभूत अविद्यामें प्रमाणका व्यापार नहीं होता है जिसमें प्रमाणका व्यापार नहीं है, प्रमाणसे अतीत है ऐसा स्वभाव रखनेवाली अविद्या है यह तो स्वीकारकर ही लेते हैं कोई भी बुद्धिमान समस्त प्रमाणोंमेंसे अतिक्रान्तरूप अविद्या व विद्याको स्वीकार नहींकरसकता और फिर यह भी देखिये कि अविद्या प्रमाणका अविषयभूत नहीं है। प्रमाण अविद्या को विषय नहीं करता यह बात अयुक्त है विद्याकी तरह अविद्या भी कथंचित वस्तु स्वरूप है क्योंकि यहाँ भेदका ही तो स्वग्रहण किया गया है विद्या नहीं तो कुछ स्थिति तो है यों अविद्या भी वस्तुरूप है और चूकि अविद्या के विषय लिए जाने में जो भेदका स्वग्रहण हुआ है उस विद्यामें यदि शंकाकार यह कहे कि फिर विद्यापने का प्रसंग आ जायगा, अर्थात् अविद्या भी सत्य बन जायगी। तो इसका समाधान यही है कि यह बात कुछ भी अनिष्ट नहीं है। स्वके ग्रहणकी पद्धतिसे जहाँ भी अविसम्वाद पाया जाय वहाँ प्रमाणपना होता ही है। अब यहाँ प्रमाणकी बात दो ढंगोंमें समझिये एक बाह्य प्रमेयकी और एक अन्तअपेक्षासे। तो किसी ज्ञानका सीप आदिमें चांदी आदिके ज्ञानका जो अविद्यात्व अज्ञान, विभ्रम सिद्ध किया जाता है वह बाधक प्रमाणसे सिद्ध किया जाता है। जैसे पड़ी तो हो कहीं सीप और जान गए चाँदी तो थोड़ी देर बाद उसका निरीक्षण करनेसे यह जब बाधकप्रमाण बन जाता है कि इसमें तो सीपके धर्म हैं चांदीके धर्म ही नहीं, अब पहिले जो ज्ञान किया गया वह विभ्रमरूप बनाना परिचय रूप हो गया। किसी सम्वेदनका अविद्यारूप हो जानायह बाधक प्रमाणसे ही निश्चित किया जाता है। तब बतलाओ कि अविद्या अप्रमाणका विषय कैसे है अथवा प्रमाण का अविषयकैसे है? अंत:प्रमेयकी अपेक्षा अविद्यामें अप्रमाण विषयता है, किन्तु सर्वथा प्रमाणका अविषय हो अविद्या, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। यदि कोई यह जानना चाहे कि अविद्याका बाधक प्रमाण क्या होता है तो सुनो! कोई भ्रमरूप ज्ञान हुआ। उसके पश्चात् फिर पदार्थका अन्य प्रकारसे स्वरूपकी सिद्धि करने वाला प्रमाण बना तो वहाँ उस अविद्यामें बाधा आ गयी। जैसेकि पहिले चाँदी जान लिया था, पश्चात् परीक्षा करनेपर चाँदीका विपरीतपना सिद्ध हुआ, चाँदी नहीं है। तो जब यह प्रमाण अनुभवमें आया तब उस अविद्याका निराकरण हो गया। तो यों अविद्या परमार्थता की अपेक्षा ही निरूपित किया जाता है। अविद्या अवस्तुभूत हुई असत् हुई, ऐसा नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, किन्तु ज्ञानकी विपरीत परिणतिका नाम अविद्या है।

अविद्याकी ब्रह्माधारताके अभावका व अविद्यामें हुई कल्पनाका शङ्काकार द्वारा कथन—शङ्काकार कहता है कि देखिये ! अविद्यावान् और अविद्यारहित परब्रह्ममें श्रवण, मनन आदि विद्याका विरोध है अर्थात् अविद्या व्यवच्छेदक परब्रह्मको अविद्यावान मान लेनेपर बड़ा दोष लगेगा अतः अथवा विद्याकी फिर अनर्थकता सिद्ध हो जाती है। इस कारण अविद्या वस्तुभूत नहीं है। विद्याका विरोध तो वहाँ यों है कि परब्रह्मको अविद्यावान् माननेपर फिर वहाँ तत्त्वका सुनना, मनन करना आदिक रूप विद्या नहीं बन सकती, क्योंकि उसे अब अविद्यावान मान लिया और विद्याकी यों है कि ब्रह्मको अविद्यारहित मान लेनेपर फिर श्रवण मनन ध्यान आदिक करनेका प्रयोजन क्या रहा? तो यह विडम्बना बनेगी अतएव अविद्या को परमार्थभूत नहीं माना जा सकता। देखिये यह इसकी अविद्या है ऐसा जो विचार होता है ऐसी कल्पना अविद्यामें रहकर ही बना करती है अर्थात अविद्याके परिणाममें रहते हुए पुरुषके ही यह कल्पना बनती है कि मैं अविद्या दू ं या इसके रविद्या है ब्रह्म के आधारमें तो ब्रह्मके कारणसे अविद्या का किसी भी प्रकार सम्बंध नहीं बन सकता क्योंकि कोई पुरुष यदि ब्रह्ममें प्रविष्ट हो गया तो उसके अविद्या नहीं ठहर सकती, क्योंकि ब्रह्म प्रविष्ट पुरुषके तो अविद्याका विनाश ही कहा जायगा इस कारण अविद्याको परमार्थताकी अपेक्षासे नहीं कहा गया है किन्तु कल्पनासे या अविद्यामें रहने वाले पुरुषके विचारके अनुसार कहा गया है। अद्वैतवादी शंका किये जा रहा है कि जब यह अनुभव होता है कि मैं ब्रह्म अविद्यारूप हूं तो इस अनुभवसे ब्रह्मकी अनुभूति वाला ही ब्रह्म होगया इसमें पहिले ब्रह्मका प्रत्यय तो किया ही गया इस कारणसे अब प्रमाणसे उत्पन्न हुए ज्ञानके द्वात वह अविद्या बाधित हो जाती है अर्थात अविद्या का फिर निराकरण कर दिया जाता है। यदि उस अविद्याको बाधित न की जाय तो याने उस अनुभव मे हमय में भी अविद्या बाधित न हो तो अविद्या भी ब्रह्मरूप हो जायगी।

अविद्यावानमें विद्याका अविरोध, विद्यावानमें विद्याकी सार्थकता, विद्यामें आकर अविद्याका परिचय व अविद्याकी ब्रह्माधारता बताते हुए उक्त शङ्काका समाधान—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि स्वभावकी अपेक्षाएं शाश्वत विद्यावान अर्थात् ज्ञानवान होनेपर भी प्रतिपत्ता आत्माके अविद्यावानपनेका विरोध नहीं है जिससे कि शङ्काकार द्वारा आशङ्कित महान दोष आ जाय। सो कथंचित् विद्यावान किसी आत्मामें अविद्याका विरोध नहीं है। तथा अविद्यारहित पुरुषमें सम्यक मतिश्रुत ज्ञानसे युक्त पुरुषमें कथंचित् विद्याकी अनर्थकताका प्रसङ्ग भी नहीं आता, क्योंकि जो अल्प सत्य विद्यासे युक्त है, मतिश्रुतज्ञानसे युक्त है, वह यदि ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपयोगमें, विद्यामें बढता है, यत्न करता है तो उसका फल सकल विद्याका, केवल ज्ञानका लाभ है। यह भी शङ्का युक्त नहीं है कि अविद्यामें ठहरकर ही अविद्याकी प्रकल्पना होती है, क्योंकि अविद्या और विद्याका विभाग करना विद्यावस्थामें ही सम्भव है, स्वप्नादिक अविद्या दशामें अविद्या व विद्याका विभाग नहीं किया जा सकता। अतः आत्मद्वारसे ही, ब्रह्मद्वारसे ही अविद्या युक्तिमती सिद्ध होती है। यह भी शङ्का ठीक नहीं है कि जब ही मैं ब्रह्म अविद्या है, ऐसा अनुभव होता है तब ही अविद्या बाधित हो जाती है, नष्ट हो जाती है अतः अविद्या आत्मामें नहीं है, ब्रह्म आधार नहीं है। यह शङ्का यों ठीक नहीं है कि जिस अनुभवसे मैं अविद्यावान हूं ऐसे अनुभव वाला आत्मा बनता है। तो उसी अनुभवसे, कथंचित् प्रमाणसे देखे हुए ज्ञान द्वारा अविद्या अबाधित हो जाती है और तब उस अनुभववान आत्माकी अविद्या भी विद्या ही हो गई। और इसमें आत्मताका विरोध नहीं किया जा सकता। वहाँ स्वसम्वेदन ज्ञानसे अविद्याकी बाधा नहीं हुई और अविद्या भी समझी गई। तो वह अविद्या पर्याय भी तो इस आत्माकी है। तो अविद्या पर्याय आत्मारूप है, इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है।

ब्रह्मके जान लेनेपर अथवा न जाननेपर अविद्याकी अबाधितता होनेका प्रसङ्ग होनेसे अव्यवस्थाकी आशङ्का तथा उसका समाधान—अद्वैतवादी शङ्काकार कहता है कि देखिये ! ब्रह्मके न जाननेपर तो उसमें अविद्याकी व्यवस्था नहीं बनती, क्योंकि वहाँ अविद्याकी बाधाका सद्भाव है। ब्रह्मको जाना ही नहीं। उसमें अविद्याकी व्यवस्था क्या करें। न जाने हुएमें अविद्याकी बात क्या रहेगी ? और, यदि ब्रह्मको जान लिया गया तो अपने आप ही उस अविद्यामें अबाधा हो गई, ब्रह्मके जाननेपर भी अविद्या प्रतीत होती है, यदि ऐसा कोई माने तो वह विद्या ही तो कहलाई। इस कारण ब्रह्मके जाननेपर भी अविद्याकी व्यवस्था नहीं बनती और इसका कारण यह है कि जो विषय अबाधित है उसको असत्य नहीं कहा जा सकता। तो जब ब्रह्मके जाननेपर अविद्यामें अबाधा रही तो वह बुद्धि फिर अविद्या क्यों कहलायेगी ? मिथ्या कैसे हो जायेगी ? देखिये ! कोई भी अविद्यावान पुरुष किसी भी प्रकार अविद्याका निरूपण करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकता। जैसे कि जो जन्मसे अंधा पुरुष है, वह दो चन्द्रोंकी भ्रांतिका निरूपण करनेमें समर्थ नहीं होसकता जन्मान्ध पुरुष दो चन्द्र जाने ही क्या ? और उसका भ्रम ही क्या बताये ? इसी प्रकार जो अविद्यावान पुरुष है वह अविद्याका निरूपण ही क्या करेगा ? उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि देखिये ! आत्माके कथंचित् अबाधित होनेपर भी नहीं समझा है आत्माको इतनेपर भी अविद्या उत्पन्न नहीं होती, यह नहीं कहा जा सकता, किसी अज्ञान विशिष्ट आत्मामें अविद्याकी उत्पत्ति रहे इसमें कोई बाधा नहीं आती। जैसे कि रजतका ज्ञान किया गया, तो उसमें बाधाका विरोध नहीं है। इसी प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ब्रह्मके कथंचित् न जाननेपर भी अविद्या बनी रहे, इसमें कोई विरोध नहीं है। जैसे कि सीपके ज्ञान न होनेपर भी वहाँ रजतका ज्ञान रहे। तो ऐसे अज्ञानका क्या विरोध है? रहना बताया ही गया है। और कथंचित् आत्माके जान लेनेपर भी अविद्या है, यह बात भी घटित हो जाती है, क्योंकि जिसने आत्माको ज्ञान लिया है उसी पुरुषके तो उस अविद्याकी बाधकताका निश्चय होता है कि वह अविद्या थी और जीवको बरबाद करने वाली थी और अब वह मृषा जचने लगी, यह सब बात आत्माके जानकारके ही तो बन सकेगी। तो बाह्य प्रमेयकी अपेक्षासे कथंचित् वह बुद्धि बाधित हो रही है इस कारणसे उसमें मिथ्यापन सिद्ध हो जाता है। अविद्याका मिथ्यापन तब ही तो सिद्ध होता है कि बाह्य पदार्थके विषयमें जैसा कुछ समझ रहे थे वैसा उसका स्वरूप नहीं है। और देखिये ! यह भी शङ्काकारका कथन युक्त नहीं है कि अविद्यावान पुरुष किसी भी प्रकार अविद्याका निरूपण करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जाय कि अविद्यावान पुरुष अविद्याका निरूपण नहीं कर सकता इसलिए अविद्या नहीं है या बाह्य प्रमेयकी अपेक्षासे अविद्यावान ही पुरुष उस अविद्याका निरूपण करनेमें समर्थ नहीं है, यह आक्षेप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा कहनेमें तो समस्त निरीक्षणके व्यवहारका लोप हो जायगा। अतः अविद्याको परमार्थतः न मानना युक्त नहीं है।

अविद्याकी सिद्धि भी प्रमाणसे होजानेके कारण अविद्यामें अवस्तुत्वके आग्रहकी अयुक्तता—अब शङ्काकार कहता है कि देखिये ! ब्रह्म वस्तुके सिवाय अन्य अवस्तुमें प्रमाणका व्यापार नहीं चला करता और अविद्या वस्तु है नहीं, क्योंकि वह प्रमाण परीक्षाको सहन नहीं कर सकती। प्रमाणकी चोट न सह सकनेसे अविद्या को अवस्तु ही कहा जायगा। अविद्यामें अद्वियावान है यह समझनेमें यहीं लक्षण तो आयगा कि वह प्रमाणका आघात नहीं सह सकता। तो जब प्रमाण द्वारा परीक्षा करने चलेंगे तब अविद्या नहीं ठहर सकती। इसी कारण अर्थात् जब अविद्यामें प्रमाणका व्यापार नहीं चलता तो अविद्या अवस्तु है, परमार्थभूत नहीं है? इस शंका के उत्तरमें कहते हैं कि यह जो बताया है लक्षण अविद्याका कि वह प्रमाणका आघात नहीं सह सकता है सो वह बात भी प्रमाणकी सामर्थ्यसे ही तो निश्चय कर रहे होगे कि अविद्या अवस्तु है। क्योंकि अविद्या प्रमाणका आघात नहीं सह सकती। लेकिन इस अनुमान प्रमाणकी सामर्थ्यसे ही तो अविद्याका वह असाधारण लक्षण भी बन गया कि वह प्रमाणका आघात नहीं सह सकती। जब प्रमाणसे सर्वथा अतिक्रान्त अर्थात् प्रमाणसे सर्वथा अविषयभूत कोई अविद्या नहीं है अर्थात् अविद्या भी प्रमाण का विषयभूत है तब उस अविद्याके मान लेनेपर फिर अद्वैतवाद नहीं रहता सो द्वैत का प्रतिषेध जो है वह अद्वैतका अविनाभावी ही कहा जायगा।

अद्वैत शब्दकी द्वैततत्वसाधकता—इस कारिकामें मूल विषय यह कहा जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है कि अद्वैत शब्द बिना द्वैतके प्रयुक्त नहीं हो सकता है। द्वैत नहीं है इसका अर्थ यह है कि द्वैत, और वह नहीं हैं तो द्वैतको तो पहिले बोलना ही पड़ा, मानना ही पड़ा जिसका निषेध करके अद्वैतकी सिद्धि की जा रही है। तो द्वैतका प्रतिषेध्य द्वैतका अविनाभावी ही होता है। क्योंकि प्रतिषेध्यके बिना किसी भी सज्ञावानका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। कुछ भी शब्द बोला जायअ–घट, तो इसका अर्थ है घट नहीं तो घटका प्रतिषेध घट प्रतिषेध्यके बिना हो नहीं सकता। लोकमें कोई घट है तब ही इस अवसरमें घटका निषेध किया जा रहा है। तो यों अद्वैत शब्दका प्रयोग ही यह सिद्ध करता है कि द्वैत है कुछ।

सभी प्रकारके सर्वाद्वैत सिद्धान्तोंकी विचारासह ।—उक्त प्रकार एक ब्रह्माद्वैतका निराकरण किया। उससे शब्दाद्वैतका भी निराकरण हो जाता है। जैसे कि ज्ञानादि अद्वैतोंमें युक्तियां नहीं ठहरती, युक्तियोंके द्वारा वह अद्वैत नहीं ठहरता इसी प्रकारसे जितने दोष अभी अद्वैतके निराकरणमें दिए गए हैं उन सब दोषोंका विषयभूत शब्दाद्वैत तत्त्व भी है। केवल कथन मात्रसे या अपनी सुरुचिका सिद्धान्त बना देने मात्रसे तत्त्वकी व्यवस्था नहीं बनती। अद्वैत एकान्त पक्षमें जो दोष कहा गया है वह दोष शब्दाद्वैतमें भी लागू होता है। कथन मात्रसे किसी तत्त्वकी व्यवस्था यों नहीं बनती कि वहाँ अपने पक्षको साधकका और प्रतिपक्षका बाधक प्रमाणका अभाव पाया जा रहा है। जहां युक्ति नहीं है, अनुभव और प्रत्यक्षसे तो जो बाधित है उसकी व्यवस्था कैसे बनायी जा सकती है? किसी भी तत्त्वकी स्वतः सिद्धि नहीं कही जा सकती। वस्तु स्वतः नही होतीं। युक्तियोंके बलपर ही हो सकती है। अन्य कोई भी उपाय नहीं है। इस प्रकार अधिक प्रसंग बढ़ाकर कथा करनेसे क्या लाभ है? निष्कर्षमें यह समझना चाहिए कि सर्वथा अद्वैत तत्त्व प्रमाणभूत नहीं है। अब यहाँ कोई दार्शनिक शंका करता है कि आपने जो अद्वैत एकान्तका निवारण किया वह इष्ट ही है, क्योंकि तत्त्व तो पृथक्त्व एकान्तरूप है। उसका तो निराकरण नहीं किया जा सकता और उसका अनादर भी नहीं हो सकता। क्योंकि जब अद्वैत एकान्त की सिद्धि नहीं है तो पृथक्त्व एकान्त है यह अपने आप सिद्ध होता है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी धारणा न बनाना चाहिए, क्योंकि—

पृथक्त्वैकान्तपक्षेपि पृथक्त्वाद पृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः ॥ २८ ॥

पृथक्त्वैकान्त पक्षमें द्रव्यसे गुणसे पृथक्त्व गुणकी पृथकता व अपृथकता दोनों विकल्पोंमें पृथक्त्वैकान्तके मिथ्यात्वकी सिद्धि—पृथक्त्व एकान्तके पक्षमें भी शंकाकार यह बताये कि पृथक्त्व गुणसे द्रव्य गुण क्या पृथक् है या अपृथक् है? यह शंकाकार नैयायिक और वैशेषिक है, इन्होंने गुणोंके भेदमें पृथक्त्व गुण भी माना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। तो उस सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि उस पृथक्त्व गुणसे द्रव्य और अन्य गुण पृथक् हैं या अपृथक हैं ? यदि कहोगे कि अपृथक हैं तो खुदके ही मतका विरोध है। अभी पृथक्त्व एकान्तकी बात कह रहे थे और यहाँ मान लिया पृथक्त्व गुणको द्रव्य और गुणसे अपृथक् है। तो इसमें खुदके सिद्धान्तका विरोध हो जाता है। और, यदि कहो कि पृथक्त्व गुणसे द्रव्य और गुण भिन्न हैं तो द्रव्य गुण अपृथक् न कहे जा सकेंगे, क्योंकि पृथक्त्व गुणको माना है कि वह अनेकमें रहने वाला है, जैसे कि संयोग गुणको अनेक पदार्थोंमें रहने वाला शंकाकारने माना है इसी तरह यह माना है कि पृथक्त्व गुण भी अनेक पदार्थोंमें रहता है। तो जिस पदार्थको जिस पदार्थसे पृथक सिद्ध करना चाहते हैं उन दोनों पदार्थोंमें वह पृथक्त्व गुण रहा करता है। तो अब बतलावें कि वह पृथक कहाँ रहा ? पृथक्त्व एकान्तका अर्थ तो है कि सब कुछ बिखरा हुआ अंश रूप अलग अलग स्वरूप वाला है। जैसे वस्तु तो एक है और उसमें गुण पर्याय आदिकका तादात्म्य है, लेकिन यह शंकाकार उन सबको पृथक पृथक ही मान रहा है। तो ऐसे पृथक्त्व एकान्तपक्षमें भी वस्तु स्वरूपकी सिद्धि नहीं होती। पृथक्त्व एकान्तका अर्थ है कि पृथक्त्व पृथक ही द्रव्यादिक पदार्थ हैं, क्योंकि पृथक इस प्रकार के प्रत्ययके विषय होनेसे। विन्ध्याचल और हिमाचल आदिककी तरह। जैसे कि विन्ध्याचल और हिमाञ्चल ये दोनों पृथक पृथक ज्ञानमें आ रहे हैं ऐसे ही द्रव्य, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये पदार्थ भी जुदे ज्ञानमें आ रहे हैं इस कारण ये पृथक हैं ऐसा एकान्त करना सो पृथक्त्व एकान्त है।

शङ्काकार दार्शनिकोंके सिद्धान्तका संकेत करते हुए पृथक्त्वैकान्तके विकल्पका निराकरण—सभी द्रव्य गुण आदिमें एकान्त वैशेषिकवादमें माना गया है और नैयायिक सिद्धान्तमें प्रमाण आदिक पदार्थ हैं, सो प्रमाण आदिक पदार्थ पृथक ही हैं, क्योंकि पृथक हैं ऐसे प्रत्ययके विषय होनेसे। ऐसा एकांत वैशेषिक सिद्धान्तमें माना गया है। तथा क्षणिकवादके अनुसार सजातीय और विजातीय पदार्थोंसे व्यावृत्त अर्थात् हटे हुए निरन्वय निजाकार बाह्य और अन्तरङ्ग पदार्थ हैं, ऐसा अभिप्राय करना इसका नाम भी पृथक्त्वैकांत है। तो इन तीन प्रकारके पृथक्त्व एकान्तोंमें इन का आग्रह है कि पृथक्त्व गुणके सम्बन्धमें पृथक पदार्थ कहलाता है। इस तरहका हेतु नैयायिक और वैशेषिक सिद्धांतमें माना है कि एक पृथक्त्व नामक गुण है, उसीके सम्बन्धसे ये सब पदार्थ पृथक कहलाते हैं। तो ऐसा आग्रह करने वाला यह पूछा जाने योग्य है कि वे बतायें कि जो पृथक्भूत पदार्थ हैं उन पदार्थोंसे पृथक्त्व नामक गुण भी पृथक है या नहीं है ? यदि यह कहदें कि पृथक नहीं है, तब तो आग्रहका विघात है, और दूसरी बात यह है कि ऐसा माना नहीं। गुण और गुणीमें उन्होंने सर्वथा भेद माना है, इसी कारण सर्व धर्म गुण गुणी ये भिन्न-भिन्न पदार्थ माने गए हैं। तो यह तो कह नहीं सकते कि अलग-अलग पदार्थोंसे वह पृथक्त्व गुण अलग नहीं है। अब

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदि पहला पक्ष लें कि पृथक्त्व गुण पृथकभूत पदार्थोंसे पृथक है तो इसका अर्थ क्या हुआ कि पृथकभूत पदार्थोंसे पृथकत्व गुण पृथक हो गया। तो पृथक होनेसे निष्कर्ष यह निकला कि द्रव्य गुण आदिक पृथक नहीं है। यदि पृथक्त्व भी पृथक हो गया तो अलगावके अलग होनेका नाम है संयोग। तो इसके मायने यह होगा कि द्रव्य, गुण, आदिक पदार्थ पृथक् पृथक् नहीं हैं सो ऐसा इन नैयायिक और वैशेषिकने नहीं माना है तब पृथकत्व एकान्तकी सिद्धि नहीं होती यहाँ।

पृथक्त्वका ज्ञान द्रव्य गुणालम्बनक होनेसे अपृथक्त्व व्यपदेशाभाव आदि दोषोंके अभावकी—शङ्का समाधान पृथक्त्व गुण जो है वह द्रव्यादिकका गुण कहलाता है। तो पृथक है ऐसा जो ज्ञान हो रहा है उस ज्ञानका आलम्बन तो द्रव्य गुण है जैसे द्रव्यसे गुण पृथक है तो पृथक है ऐसे ज्ञानका सहारा तो द्रव्य और गुणका रहा, उनमें ही उसका नाम लेकर पृथक्त्वकी बात कही जा रही है। तो पृथक ऐसा जो ज्ञान है, वह द्रव्य गुणके आलम्बनसे हुआ है इस कारण उनमें अपृथक्त्वका प्रसंग नहीं आता। सो सब पृथक ही हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यदिउस पृथक्त्वज्ञानका द्रव्य गुणका आलम्बन लेनेसे उनमें अपृथक्त्वका प्रसंग नहीं माना तो इसका अर्थ यह है कि पृथक्त्वका अब कथंचित् द्रव्यके साथ तादात्म्य हो गया। जब द्रव्यके साथ पृथक्त्व गुणका तादात्म्य आ गया तो पृथक्त्वैकान्त न रहा। यदि तादात्म्य नहीं मानते तो सुनो! गुण गुणीमें यदि तादात्म्य नहीं मानते, सर्वथा भेद मानते हो तो घट पटकी तरह उनका व्यपदेश भी मत होओ। जैसे कि घट और पटमें कौन गुण है और कौन गुणी यह व्यवस्था तो नहीं है। क्या घटका गुण पट हैं अथवा पटका गुण घट है। उनमें यह व्यपदेश तो नहीं बनता? इसी प्रकार गुण गुणीमें भी जब सर्वथा भेद मान लिया तो यह गुण है यह गुणी है यह भेद न बन सकेगा क्योंकि गुण और गुणीका सम्बन्ध बनाने वाली कोई दूसरी चीज नहीं है। यदि शंकाकार यह सोचे कि कथंचित तादात्म्य ही उनके सम्बन्धका कारण है तो ठीक है, तो फिर द्रव्यसे गुण पृथक तो न हुए। और बात है भी यही कि गुण और गुणीका कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है तो तादात्म्य सम्बन्ध होनेपर भी भेद दृष्टिसे उन्हें भिन्न—भिन्न लक्ष्यमें भी लिया जाता है, लक्षण द्वारा उनकी पहिचान करनेके लिए, इस कारण कथंचित् तादात्म्य नामसे कहा गया है। तो कथंचित् तादात्म्य ही उनके सम्बन्धका कारण है। तादात्म्यको छोड़कर अन्य कोई गुण गुणीके सम्बन्धका कारण नहीं बन सकता। शंकाकार कहता है कि गुण गुणीमें सम्बन्धका कारण तो समवायकी वृत्ति है। गुणका समवाय गुणीमें है इस कारणसे उनका सम्बन्ध मान लिया जाता है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि समवाय तो कथंचित् अपृथकभूत सम्बन्धका नाम है। तो अपृथकपनेसे भिन्न अन्य कोई समवाय नहीं होता। समवाय कहो या कथंचित् तादात्म्य कहो दोनोंका एक ही अर्थ होगा। यदि कथंचित् तादात्म्यको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़कर समवाय कुछ पृथक पदार्थ हैं तो उसकी सिद्धि नहीं। ऐसे समवायका तो निराकरण किया गया है।

पृथग्भूत गुणोंको जिनसे पृथग्भूत हैं उन्हीं अनेकोंमें रहने वाला मानने पर आश्चर्य—अब यहाँ आश्चर्यकी बात देखिये ! पृथक्त्व गुण हों या अन्य कोई संयोगादिक गुण हों, जिन्हें कि पृथग्भूत माना है, निरंश माना है, द्रव्यादिकसे अलग हैं ये और स्वयं अंशकल्पनासे रहित हैं और फिर भी ये कहते हैं कि अनेक पदार्थोंमें एक साथ रह रहे हैं, यह कितनी परस्पर विरुद्धताकी बात हैं कि जो पृथक है, निरंश है और फिर अनेकमें एक साथ रह रहा हो, इसे कौन स्वीकार करेगा ? अनेक देशोंमें स्थित हिमालय और विंध्याचल आदिक जो पर्वत हैं उनमें एक ही साथ एक परमाणु रह जाय, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? परमाणु निरंश है और वह इन पर्वतोंमें एक साथ रह जाय, यह सम्भव नहीं है। इसी प्रकार पृथक्त्व व संयोगादिक गुण जो निरंश माने गए हैं और पदार्थोंसे अलग माने गए हैं, और एक साथ पदार्थोंमें रह जायें, यह कैसे सम्भव है ?

आकाश, सत्ता, द्रव्यत्व आदिको पृथक एकका अनेकोंमें रहना सिद्ध करनेके प्रस्तावमें उदाहरणरूपमें बतानेकी असङ्गतता—शङ्काकार कहता है कि देखिए ! आकाश आदिक भी तो निरंश हैं, अखंड हैं, वे तो अनेक पदार्थोंमें एक साथ रह रहे हैं ? तो इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि आकाश तो निरंश नहीं है, अनन्त प्रदेश वाला है, उसे अनंश नहीं कह सकते। हां अखंड है, वह अनन्तप्रदेशी होनेपर भी आकाश अखंड है यह तो कहा जा सकता है। और ऐसा है, किंतु आकाश अंशरहित हो सो बात नहीं है। और, दूसरी बात यह है कि आकाश तो अनाश्रय है, वह किसीमें रहता नहीं है, वह अनन्तप्रदेशी होनेपर भी आकाश अखंड है, यह तो कहा जा सकता है। और, ऐसा है, किंतु आकाश अंशरहित हो सो बात नहीं है। और, दूसरी बात यह है कि आकाश तो अनाश्रय है, वह किसीमें रहता नहीं है, वह किसीका आश्रय लेता नहीं है इस कारण वह किन्हीं पदार्थोंमें नहीं रह रहा। परमार्थ तत्त्व भी यही है कि आकाश एक स्वतंत्र द्रव्य है, वह अपने आपमें पूर्णतया रह रहा है। अन्य पदार्थोंमें नहीं रहता। तो आकाशके साथ भी तुलना देकर पृथक्त्व या संयोगादिक गुणोंको अनेकमें एक साथ रहने वाला सिद्ध नहीं कर सकते ! शङ्काकार कहता है कि देखो ! सत् तो एक है ना, और वह एक साथ अनेक पदार्थोंमें रह रहा है, याने सभी पदार्थ सत् हैं और यह सत्ता सभी पदार्थोंमें एक साथ रह रही है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी असिद्ध है। सत् भी सर्वथा एक नहीं, वह अनन्त पर्यायरूप हैं, जितने व्यक्ति हैं उन सब व्यक्तियोंमें उनकी अपनी सत्ता है। आवान्तर सत्ता अनेक हैं और अपनी व्यक्तियोंसे उनकी सत्ताका भेद सिद्ध नहीं है और यहाँ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समवायकी वृत्ति ही नहीं है, क्योंकि वे सब स्वयं सत् हैं। अब द्रव्यत्व आदिक सामान्योंकी भी बात सुनो ! सामान्य दो प्रकारके माने गए हैं—एक परसामान्य, दूसरा अपरसामान्य। परसामान्यमें तो सत्त्व आता है और अपरसामान्यमें द्रव्यत्व आदिक याने उस सत्त्वके भेद प्रभेद करते हुए जो माने गए हैं वे अपरसामान्यमें आते हैं। जैसे नैयायिक वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार सत्त्व तो सामान्य है परसामान्य है। और द्रव्यत्व गुणत्व आदिक जो पदार्थ माने गए हैं सो वे अपनी जातिमें सबमें रहते हैं इस कारणसे सामान्य हैं, किन्तु परसामान्यके विभाग हैं इस कारण अपरसामान्य कहलाते हैं। तो द्रव्यत्व आदिक सामान्य भी तो एक नहीं हैं, अनंश नहीं हैं अर्थात् अनेक व्यक्तियोंमें रहने वाला एक साथ प्रसिद्ध तो है, पर वह भी अपनेमें ही आश्रयभूत होनेसे कथंचित सांश है इसलिए वह भी अनेक विषियोंसेमें है, सो अपरसामान्य को एक अनंश नहीं कह सकते हैं।

संयोग विभाग, परत्व अपरत्व, द्वित्वादि संख्याको भी पृथक एकका अनेकोंमें रहनेके प्रस्तावमें उदाहरणरूपसे प्रस्तुत करनेकी अयुक्तता—अब अन्य पदार्थ भी जैसे संयोग, विभाग, पृथक्त्व, अपरत्व आदि इनको अनेक पदार्थों में रहने वाला माना है सो ये भी एक साथ अनेक पदार्थोंमें रह नहीं सकते क्योंकि प्रतियोगी आदिक संयोगादिक भेदोंकी वहाँ प्रतीति हो रही है, इस कारणसे सदृशता के विचारसे ही उन सबमें एकत्वका व्यवहार किया गया है। वास्तवमें संयोग कोई एक हो और वह फिर अनेक पदार्थोंमें रहता हो ऐसा नहीं है। माना संयोग कोई एक गुण है तो पदार्थ जहां मिला हुआ है वहां भले ही कहलो कि संयोग उनमें रह रहा है, पर जहां पदार्थ मिला नहीं है, एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें अन्तर पड़ा हुआ है, तो उस अन्तरमें संयोगकी क्या अवस्था है, तो संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व यह उससे जुदा है, यह उससे बड़ा है, यह उससे छोटा है आदिक गुण ये अनेक प्रतीत हो रहे हैं, क्योंकि प्रतियोगी अनेक हैं। संयोग आदिक भेद भी अनेक हैं, ये सब अनेक हैं, पर सदृशताके विचारसे उनमें एकत्वका व्यवहार होता है। यदि शंकाकार यह कहे कि देखिये—द्वित्व आदिक संख्या तो अनेक द्रव्योंमें एक साथ पायी जा रही है। जैसे ये दो हैं, किन्हीं पदार्थोंको बताया जो दो थे, सो कहां दो रह रहे हैं ? तो उनमें जो द्वित्व संख्या है वह एक साथ रह रही है और अनेक पदार्थोंमें रह रही है। समाधानमें कहते हैं कि यह भी प्रतीति विरुद्ध बात है। प्रत्येक व्यक्तियोंमें समस्त संख्याओं का भेद सिद्ध है। कभी कहीं खरविषाण आदिक किसी जगहमें संख्याकी असिद्धि है (खरविषाणमें कितनी संख्या है) सो अपृथक्संख्येयकी अपेक्षासे द्वित्वादिक विशेषोंकी प्रतीति वहां नहीं होती इस कारणसे पृथक्त्व अनेक पदार्थोंमें एक साथ रहता है, यह कहना समीचीन नहीं है। पृथक्त्व नामक गुण अनेक वस्तुओं में एक साथ रह नहीं सकता, गुण होनेसे रूपादिककी तरह।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे रूप, रस आदिक गुण हैं तो वे सब जगह एक साथ रहते नहीं हैं। जैसे परमाणु पदार्थका रूप है। वह रूप उस ही परमाणुमें उस ही पदार्थमें रह सकता है। इस कारण पृथक्त्व गुण मानकर फिर सब वस्तुओंका पृथक्त्व एकांत मानना युक्त नहीं है।

पृथक्त्वैकान्त पृथक्त्व गुणकी असिद्धि—नैयायिक और वैशेषिक द्रव्य, गुण क्रिया, सामान्य आदिकको पृथक पृथक स्वतंत्र स्वतंत्र तत्त्व मानते हैं और जैसे द्रव्योंके दिशाकाल आत्मा आदिक भेद किए हैं इसी प्रकार गुणोंके संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व आदिक भेद किए हैं। एक पृथक्त्व नामका भी गुण माना गया है, जिसे मानते हैं कि जैसे संयोग गुण जिनमें संयोग हो रहा उन सब पदार्थोंमें एक साथ मौजूद रहता है इसी प्रकार पृथक्त्व गुण जिसमें कि अलगाव रहता है, जैसे कि द्रव्य से गुण अलग है, तो द्रव्य गुण इन दोनोंमें पृथक्त्व गुण पड़े हुए हैं। उसी सम्बन्धमें निराकरण करते हुए अनुमान प्रयोग किया गया है कि पृथक्त्व कभी अनेक पदार्थोंमें एक साथ रहता नहीं, गुण होनेसे, जैसे रूप, रस आदिक गुण हैं तो वे अनेक पदार्थों में एक साथ नहीं रह सकते हैं। जिसका जो रूप है वह उसीमें ही रहेगा। दूसरी बात क्या ? कि रूपको भी क्षणिकवादियोंने निरंश माना है। वह भी क्षणिकवादियोंने निरंश माना है। वह भी व्यापक नहीं है। तो जैसे रूप गुण एक साथ सब पदार्थोंमें नहीं हैं इसी प्रकार पृथक्त्व गुण भी एक साथ सब पदार्थोंमें नहीं रह सकता। शंकाकार कहता है कि इस हेतुका संयोग आदिकके साथ व्यभिचार आता है। जैसे सयोग नामका गुण एक साथ अनेक वस्तुओंमें रहता है और गुण है तो गुण होनेपर सब वस्तुओंमें न रहे तब तो स्याद्वादका कहा गया हेतु सही बना लो। किन्तु, जिन पदार्थों में संयोग है उन पदार्थोंमें सबमें संयोग नामका गुण एक साथ रहा है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि गुणत्व हेतुका संयोग आदिकसे अनेकान्त दोष नहीं बतला सकते क्योंकि संयोग आदिक विषय भी तो अनंश माने गए हैं, निरंश हैं, अनेक प्रदेशी नहीं हैं। तो ऐसे निरंश संयोग आदिक गुण भी तो एक साथ अनेक द्रव्योंमें नहीं रह सकते हैं। अतः जैसे पृथक्त्व गुण, है तो वह एक साथ सब पदार्थोंमें न रहेगा। इसी प्रकार संयोग आदिक भी गुण हैं और वे एक साथ अनेक द्रव्योंमें न रह सकेंगे।

पृथक्त्ववान पदार्थोंसे पृथक्त्व गुणका पार्थक्य या अपार्थक्य माननेके दोनों विकल्पोंमें पृथक्त्व गुणकी सिद्धिका अशक्यता—उक्त प्रकार जो लोग पृथक्त्व एकान्त मानते हैं कि सर्व पदार्थ स्वतंत्र न्यारे न्यारे हैं और उनमें इतना न्यारा पन है कि एक ही वस्तुमें पायी जानी वाली पर्यायें शक्तियां ये भी बिखरी हुई स्वतंत्र नाना नाना हैं। ऐसा जो पृथक्त्व एकान्तका आग्रह करते हैं उनके यहाँ ये दो पक्ष पूछे जानेपर विरोध होता है और इस पृथक्त्व एकान्त पक्षका निराकण होता है। वे दो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पक्ष यही है कि वह पृथक्त्व नामका गुण और अन्य पृथक्त्वभूत पदार्थोंसे पृथक है या नहीं ? पृथक्त्व नामका गुण पृथग्भूत अन्य अन्य सब पदार्थोंमें अलग है, तो अब पृथक्त्व एकान्त तो न रहा। क्योंकि जब पृथक्त्व गुणका सर्व पदार्थोंसे अलगाव हो गया तो इसके मायने है कि वे सब पदार्थ एकमेक हो गए। तब द्रव्य, गुण एक स्वरूप हो जायेंगे जो कि शंकाकारको इष्ट नहीं हैं। और यदि कहो कि पृथक्त्व गुणसे पृथकभूत पदार्थ निराले नहीं हैं तो पृथक्त्व गुण न रहा। एक पृथक्त्ववान पदार्थसे भिन्न कोई पृथक्त्व गुण माना ही नहीं, फिर पृथकपना क्या रहेगा ? जैसे कहते हैं कि द्रव्यसे गुण निराला है और यह न्यारापन पृथक्त्व गुणके कारण होता है, अब पृथक्त्व गुण तो द्रव्य गुणमें मानते नहीं वे सब अलग पड़े हैं। तो द्रव्य और गुणकी पृथकता कैसे सिद्ध होगी ? इस कारण पृथक्त्वका एकान्त करना असिद्ध है। यहाँ तक नैयायिक और वैशेषिक दोनोंकी अपेक्षासे पृथक्त्व एकान्तका निराकरण किया। अब क्षणिकवादी भी पृथक्त्वना एकान्त मानते हैं। उनका पृथक्त्व एकान्त है निरन्वय क्षणिक रूप। निरन्वय क्षणिकका अर्थ है कि एक धारामें प्रतीत होने वाले क्षणोंका भी कोई अन्वय नहीं रहता और क्षणमें पदार्थ नष्ट होते रहते हैं। जिससे एक देहमें करोड़ों आत्मा भिन्न-भिन्न समयोंमें उत्पन्न होते हैं और एक आत्माका दूसरे आत्माके साथ अन्वय नहीं है क्योंकि क्षणिकवादमें उन सबको अत्यन्त भिन्न-भिन्न माना है तो ऐसा पृथक्त्व एकान्त क्षणिकवाद माना गया है। उनके पक्षमें भी दूषण बतानेके लिए आचार्यदेव कहते हैं :

संतानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरंकुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिन्हवे ॥ २६ ॥

एकत्वका निषेध करनेपर अर्थात् पृथक्त्वैकान्तमें संतान, समुदाय साधर्म्य, प्रेत्यभाव सभी सिद्धान्तोंके अपलापका प्रसङ्ग—एकत्वका लोप करने पर न तो संतान बनेगा, न समुदाय, न सदृशता और न परलोक, ये कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकते। यदि एकत्व मिटा दिया जाय, जीव कोई एकत्व नहीं है, तब उसकी पर्यायोंकी संतान क्या चलेगी ? अथवा वह संतान जिसमें उन अनेक चितक्षणोंका अन्वय रहता है वह सिद्ध न होगा। इसी प्रकार जो स्कंधोंका समुदाय है, अनन्त परमाणुओंका मेल है वह समुदाय भी न बनेगा, क्योंकि किसी भी प्रकार एकत्व न माननेका आग्रह किया जा रहा है। यों ही साधर्म्य भी न बनेगा, क्योंकि किसी भी दृष्टिसे जब एकत्व ही नहीं माना जा रहा तो कैसे कहा जा सकेगा कि यह पदार्थ इसके सदृश है पृथक्त्व तो तब कहा जाता है जब किसी रूपसे एकत्व परखा गया हो। पृथक्त्वैकांतमें परलोक भी नहीं बन सकता, क्योंकि कुछ जब एक माना ही नहीं गया तो किसका परलोक ? जो इस लोकमें भी हो और वही परलोकमें भी जाय तब तो उसका नाम परलोक है। तो यह सब सिद्धान्त एकत्वका लोप करनेपर नहीं बनता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पृथक्त्वैकान्त पक्षमें सतान, समुदाय व साहृश्य सिद्ध न हो सकनेका विवरण—उक्त प्रसङ्गोंका विवरण अब क्रमश: सुनिये ! जीवादिक द्रव्योंका एकत्व जो लोग नहीं मानते, जैसे कि माना करते हैं कि एक ही शरीरमें करोड़ों आत्मा एक घण्टेमें उत्पन्न हो जाते हैं। तो जैसे वे भिन्न-भिन्न आत्मा हैं तो उनकी संतान क्यों कहलायेगी ? जैसे जो भिन्न-भिन्न देहोंमें रहने वाले जीव हैं क्या उन जीवोंकी संतान बन जाती है ? देवदत्तके शरीरमें जो आत्मा बन रहे हैं और यज्ञदत्तके शरीरमें जो आत्मा बन रहे हैं तो दोनों देहोंकी आत्माओंकी संतान तो नहीं मानते कि वे एक धारामें चल रहे हैं और एककी हुई बातका दूसरा स्मरण कर सके। तो जैसे भिन्न संतानोंमें जो क्षण क्षण माने गए हैं उनकी संतान नहीं बनती। इसी प्रकार जीवादिक द्रव्यमें भी जब एकत्वको नहीं मानते तो एक ही देहमें चलने वाले जीवोंमें भी संतान न बन सकेगी। इसी तरह समुदायकी बात देखो जैसे एक स्कन्धमें जितने परमाणु हैं, उन परमाणुओंको किसी भी प्रकार जब एकत्व परिणमन नहीं मानते, वे सब मिलकर एक रूपमें आये हैं एक पिण्डरूप हुए हैं, जब ऐसा कुछ माना ही नहीं जा रहा है तो समुदाय क्या रहेगा ? जैसे बहुतसे डले पडे हैं तो उनका एक दूसरे डलेमें समुदाय नहीं माना है तो क्यों नहीं माना कि वे भिन्न-भिन्न स्कंध हैं, तो इसी प्रकारएक स्कंधमें रहने वाले परमाणुओंसे भी जब सर्व प्रकार भिन्न-भिन्न रहते ही माने जा रहे हैं, उनमें किसी भी प्रकार एकत्व नहीं मानते तो वहाँ भी समुदाय नहीं बन सकता। अब सदृशताकी बात देखिये कि पृथक्त्वैकांतमें साहृश्य भी सिद्ध नहीं किया जा सकता, सदृशरूपसे माने गए जो पदार्थ हैं उनमें सदृश परिणमनका एकत्व तो नहीं माना गया। तो वहां सदृशता नहीं आ सकती। जैसे कि सदृश पदार्थ हैं, उनमें एकता नहीं आती है, क्यों नहीं आती कि विसदृश इन पदार्थोंमें सदृश परिणमनका एकत्व नहीं है कि यह उसके समान है। तो इसी प्रकार जो सदृश सदृश पदार्थ हैं उनमें भी सदृश परिणामका एकत्व नहीं माना गया। तो वहां भी सदृशता कैसे मानी जा सकेगी ? तो एकत्वका अपलापकरनेपर न तो संतान बना न समुदाय और न साहृश्य बनता।

पृथक्त्वैकाँतपक्षमें परलोक दत्तग्रहण आदि न हो सकनेकी विडम्बना अब परलोककी बात सुनो ! मर करके फिर जन्म लेनेका नाम है परलोक। तो यह भी उनके अभिमतमें नहीं बन सकता। जो लोग एकत्वका अपलाप करते हैं। क्योंकि दोनों भावोंमें रहने वाला कोई एक आत्मा हो तब तो परलोककी बात कही जाय कि यह यहांसे मरा और इसीने दूसरे भवमें जन्म लिया। दोनों भवोंमें रहने वाला एक आत्मा क्षणिकवादमें माना ही नहीं गया। तो जैसे नाना जीवोंका परस्परमें परलोक तो नहीं कहा गया। देवदत्त और यज्ञदत्तके जीव एक दूसरे रूप तो नहीं हुए, उनको परलोक तो नहीं कहा जाता, क्योंकि भिन्न-भिन्न जीव हैं। इसी

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार जब ज्ञान क्षण माने गए हैं केवल, जीव नामका द्रव्य नहीं माना गया तो उन का परलोक क्या कहलायेगा ? इसी प्रकार दत्तग्रह आदिक भी सिद्ध न होंगे, किसी ने कोई धन उधार दिया। बहुत दिनों बाद अब उसका वह धन वसूल कर सकनेकी बात क्षणिकवादमें न बन सकेगी। क्योंकि जिसने दिया वह तो समाप्त हो गया, अब देना किसे रहा ? अथवा जिसने दिया वह तो समाप्त हो गया। अब लेने वाला कौन है ? जिसको दिया उसीसे लेवो और जिसने दिया वही लेवे। यह व्यवस्था क्षणिकवादमें नहीं बन सकती। तो इसी तरह ये सब बातें जो कि प्रतीति सिद्ध हैं वे जब एकत्वके अपलाप करनेपर नहीं बनती तो पृथक्त्व एकांतका पक्ष लेना सही नहीं है। संतान समुदाय, साधर्म्य, परलोक, दत्तग्रहण आदिकका अभाव नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ये सब प्रतीतिमें ही आ रहे हैं और उनके सद्भावमें बाधक कारण कोई नहीं है।

एकत्वका निन्हव करनेपर भी अविदितभेद कार्यकारणक्षणोंकी सन्तानरूपता सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रस्ताव और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि देखिये ! संतानका अर्थ यह है कि जिसमें भेद नहीं जाना गया ऐसे कार्यकारण क्षणोंका नाम है। जैसे अन्य दार्शनिकोंके यहां द्रव्य गुण आदिककी व्यवस्था क्षणिकवादमें नहीं है, किंतु एक समयमें जो समय है वही कहां परमार्थभूत, वस्तु है। तो एक समयमें जो भी हो उसीका नाम क्षण है। ज्ञानक्षण वह है जो जानने वाला क्षण है और अर्थक्षण है नीलपीतादिक पदार्थ। यहां भी कोई पुद्गल पदार्थ नहीं माना गया, किन्तु जिसे एक परमाणु कहते या कोई एक चीज हो ऐसा निरंश ही तत्त्व माना गया है, वहां स्कंध नामकी कुछ वस्तु नहीं। किन्तु रूपक्षण, रसक्षण, गंधक्षण, स्पर्शक्षण ये सब बिखरे हुए वहां पड़े रहते हैं ? तो जो कार्यक्षण है और कारणक्षण हैं उनमें भेद नहीं जाना गया हो तो उनका ही नाम संतान है। यद्यपि इनमें भेद हैं। कार्य क्षण भिन्न पदार्थ हैं कारणक्षण भिन्न पदार्थ हैं फिर भी जब इनमें भेद नहीं समझा जाता है तो इसीका ही नाम संतान है। जैसे पहिला आत्मा कारण है दूसरा आत्मा कार्य है एक देहमें जितने ज्ञानक्षण होते रहते हैं उनमें पहिला ज्ञानक्षण कारण है और अनन्तरवर्ती द्वितीय ज्ञानक्षण कार्य है, इसी प्रकार पदार्थोंकी भी बात है। पहिला रूपक्षण कारण है उत्तर रूपक्षण कार्य है तो इसमें भेद नहीं परखा जा रहा है कि वह पहिला ज्ञान तो नष्ट हुआ है। तो जब इनमें भेद नहीं जाना जा रहा हो तो उस हीका नाम संतान है। धाराप्रवाह होते रहने का ही नाम संतान है। यों वह संतान तो एकत्वका अपलाप करनेपर भी घटित हो ही जाता है ऐसा जो मानते हैं उनके प्रति समाधान करते हैं। उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि कार्यकारणका पृथक्त्व एकांत करनेपर उत्तरकार्य बिल्कुल अलग पड़ा है उनका किसी प्रकारका भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसी बिल्कुल भिन्नता माननेपर तो अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह कारण कार्यके सम्बन्धमें अपना स्वरूप तो नहीं रख रहा। कारण माना है क्षणिकवादमें पूर्ववर्ती पदार्थको और कार्य माना है उत्तर समयमें होने वाले पदार्थ को। तो जब उत्तरक्षण आता है तो पूर्वक्षण तो रहा नहीं। तो कार्यके समयमें जो अपना स्वरूप न रख सका उसको कारण नहीं कहा जा सकता। वह है नहीं। कार्य के समयमें। अतः कारणपनेकी उत्पत्ति न होनेसे अब संतति कैसे रहेगी? शंकाकार का यह कहना था कि जिसमें भेद ज्ञात नहीं होता, ऐसा कार्य और कारणके क्षण ही सतान कहलाते हैं तो अब यहां जब कारणपना न बना तो संतान कहांसे सिद्ध करेंगे?

कार्यकालमें उपस्थित पदार्थमें कारणत्व जाननेपर विडम्बनाकी आशङ्का का शङ्काकार द्वारा कथन—शङ्काकार कहता है कि देखिये! कार्यके समयमें जो मौजूद हो उसीकोअगर कारण माना जाय तो कार्यके समयमें ऐसे भी पदार्थ हैं जो कार्यके कारणरूप नहीं हैं तो कार्यके कालमें जब अनेक पदार्थोंका सद्भाव है तो सभी पदार्थ कार्यके कारण बन बैठें। इससे यह कहना कि कारण कार्यके कालमें हो तभी उसमें कारणता आयगी, यह बात विरुद्ध हो जाती है, क्योंकि कार्यके समयमें बहुतसे पदार्थ हैं। जैसे जब घट बन रहा है तो घटनिर्माणके समयमें दर्शक लोग भी खड़े हैं और अनेक पशु भी खडे हैं तो क्या वे सब कारण बन जायेंगे? नहीं बनते! अतः यह कहना ठीक नहीं है कि कार्यके कालमें अपना स्वरूप रखता हो तब कोई कारण कहा जा सकेगा! और भी देखिये! इसी तरह तो मान रहे हैं जैन आदिक कि कार्यसे पहिले तो न हो और द्रव्यादिक रूपसे हो तथा कार्यके कालमें भी हो उसको उस कारणका कार्य कहा जाता है। तो इस तरह यदि कार्यकी उत्पत्ति मानी जाती है जैसे कि मृतपिण्डसे घट बना तो घटका कारण मृत्पिण्ड है। तो घट तो नहीं है अभी कार्यके रूपमें अर्थात् घटके रूपमें वहाँ कोई वस्तु नहीं है तो पहिले तो घट असत् ही रहा, किन्तु मिट्टीके रूपसे पहिले भी था और कार्यके समय भी है, तो द्रव्यरूपसे तो जो सत् हो और विवक्षित कार्यके रूपसे असत् हो ऐसे ही कार्य की उत्पत्ति मानी जाती है, ऐसा जैन आदिक दार्शनिकोंका सिद्धान्त है। तो इस तरह की मान्यता होनेपर फिर तो गधेके मस्तकपर सींगकी भी उत्पत्ति क्यों नहीं हो जाती क्योंकि, वहाँपर भी द्रव्यरूपसे गधा मौजूद है और सींगरूपसे असत् है। यही तो मानते हो ना कि जो कार्यके रूपसे तो असत् होता और द्रव्यके रूपसे सत् होता, उसमें कारणता आती है। तो अब जैसे कि गौ आदिकके शिरपर विषाण आदिक उपकार रूपसे तो नहीं है। पहिले जब कि वह बछड़ा है छोटा है, और गौके रूपसे पहिले भी है और सींग उगनेपर भी है तो द्रव्य रूपसे पहिले हो, कार्यके समयमें भी हो और कार्यके आकार रूपसे न हो वहाँ कारण कार्य व्यवस्था मानी हैं तो इसतरह गधेमें भी बात पायी जाती है कि विषाणका तो अभाव है पहिले और खरका सद्भाव है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वहाँपर भी प्रागभावरूप असत विषाणकी उत्पत्ति क्यों नहीं हो जाती ?

कार्यकारणक्षणोंमें संतानरूपताकी सिद्धिके लिये कार्यकारणभावको निर्दोष बतानेका शंकाकारका प्रयास–शंकाकार कह रहा है अक्षणिकवादियोंसे कि यदि कहोगे कि विषाणकी उत्पत्तिका कारण दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारके होते हैं, अदृष्ट कारणके मायने हैं भाग्य और दृष्ट कारणके मायने है जो कुछ प्रत्यक्षमें समझा वह, तो खरमें सींगकी उत्पत्तिका कारण नहीं है, न दृष्ट कारण है न अदृष्ट कारण है कारण स्वरके खरकमें सींगकी उत्पत्ति नहीं होती है यदि यों कहोगे तो फिर क्षणिकवादमें भी यह कार्यवात मानलें कार्यकी पहिले असत्त्वकी अविशेषता होनेपर भीअर्थात् के समयमें कारण न था, फिर भी, वहाँ यह नियम तो है कि पहिले कारण न हो तो कार्यका जन्म होता इस न्यायसे अब यहाँ कोई अतिप्रसंग नहीं आता कि जैसेयह आशंका कर सकते थे कि विवक्षित कारणसे विवक्षित कार्यकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार अविवक्षित कारणसे अविवक्षित कार्यकी उत्पत्ति भी क्यों न हो जाय, सो यह अति प्रसंग अब यहां नहीं आसकता है क्योंकि कारणमें कार्य की कारणता आवे एतदर्थ कार्य के साथ कारणका अन्वयव्यतिरेक का सम्बंध होना चाहिये सो यहां अन्वय व्यतिरेक का सम्वंध मिलता ही है कि पहिले कारणहो तब पीछे कार्यका जन्म होता है। पहिले कारण न हो तो कार्यका जन्म नही होता इस कारणकोई दोष क्षणिकवाद में नहीं दिया जा सकता ऐसा नहीं कह सकते कि निरन्वय क्षणिक होनेपर फिर कार्यका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्वंध नहीं होता देखिये सम्वंध हैं कारण अपने कालमें हो तब कार्यकी उत्पत्ति होती है, कारण यदि स्वकालमें नहीं है तो वहां कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। इस तरह कारण कार्यभाव इन क्षणोंमें युक्तिसंगत है। जैसे कि स्वदेशकी अपेक्षासे अन्वय व्यतिरेक माना जाता है कि जिस कारणके स्वदेशमें होनेपर अर्थात् स्वदेशमें कारण होनेपर कार्यकी उत्पत्ति होती है और अपने देशमें कारण न हो तो कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। जिस जगहमें अग्नि हो वहां धूमकी उत्पत्ति होती है तो जैसे देशके साथ अन्वय व्यतिरेक सन्बन्ध है ऐसे ही यहां कालके साथ भी अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध बन जाता है। इस कारण अपरामृष्टभेद कार्य,कारणक्षणोंकी संतानरूपतामें कोई दोष नहीं दिया जा सकता। कार्य कारणक्षणोंका ही नाम संतान है, पर वहां उसमें भेद विज्ञात नहीं है, यह बात विल्कुल युक्तिसंगत है कि यह क्षण जिसमें कि भेद नहीं जाना गया है और अव्यभिचार रूपसे कार्यकारणभूत हैं तो वह संतान कहलाता है। ऐसा क्षणिकवादियोंकी ओरसे आशंका की गई।

निरन्वयवादमें कारण कार्य व्यवस्थाकी विडम्बना बताते हुए उक्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहने वाले निरंशवादी प्रतीतिके अनुसार नहीं चल रहे। यदि इस तरह कारणकार्यका विधान बनाकर एक संतान सिद्ध किया जायगा तो बुद्ध और बौद्धोंके ज्ञानमें भी एक संतान-पनेका प्रसंग हो जायगा। बुद्ध तो हैं प्रभु और बौद्ध कहलाये जो उनके उपासक हैं। तो बुद्धको माना है सर्वज्ञ तो उन्होंने सबको जान लिया ना ? बौद्धोंके ज्ञानक्षणोंको भी जान लिया। और यह नियम बनाया गया है निरंशवादमें कि कार्यकी उत्पत्ति कारणसे होती है। ज्ञानकी उत्पत्ति उस विषयसे होती है जो विषय ज्ञानमें आ रहा है, और उसे कारण कहा गया है। तो जब बुद्धके ज्ञानमें बौद्धोंके ज्ञानक्षण आ गए तो उन ज्ञानक्षणोंमें कारणता आ जायगी। तो जब बौद्धज्ञानक्षण कारण हो गए और बुद्धज्ञानक्षण कार्य हो गया तो इन दोनोंमें एक संतानपनेका प्रसंग हो गया। एक ही आधार में वह बौद्धज्ञानक्षण कहलाया और बुद्धज्ञानक्षण कहलायेगा, क्योंकि उन दोनों ज्ञानक्षणोंमें (बुद्ध और बौद्धोंके ज्ञानक्षणोंमें) अव्यभिचार रूपसे कारणकार्यपना पाया गया है। यहां शंकाकार कहता है कि देखिये ! बुद्धका ज्ञानक्षण जब निराश्रय न हुआ था अर्थात् सर्वज्ञता और निराश्रयता प्रभुता उत्पन्न होनेसे पहिले तो बुद्धके ज्ञानक्षणका संतानान्तरके ज्ञानक्षणसे सम्बन्ध न था याने जब प्रभु बुद्ध न हुए, उनका निराश्रय ज्ञानक्षण न बना अर्थात् कर्म न आये ऐसा शुद्ध ज्ञानक्षण न था तब तो वह बौद्धोंके ज्ञानक्षणको न जान रहा था तब तो कारणता न आयी, इस कारणसे यह न कहा जा सकेगा कि बुद्ध और बौद्धोंके ज्ञानक्षणमें अव्यभिचारी कार्य कारण भाव है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि भाई जबसे बुद्धक्षण और बौद्धक्षणोंमें कार्य कारण भाव हुआ है तबसे तो कार्यकारण भाव सही मानना ही पड़ेगा। अर्थात् जब निराश्रय चित्त बना है तब तो समस्त बौद्धोंके ज्ञानक्षणोंको जान लिया ना ? तो अब बुद्धका जो ज्ञान है उसमें कारण इन उपासकोंका ज्ञान हो गया तो तब कार्य कारण भाव मान लीजिए। और इस दृष्टिसे उस समय उन सब ज्ञान क्षणोंमें एक संतानपना स्वीकार कर लीजिए अन्यथा अर्थात् यदि निराश्रय ज्ञान होनेपर बौद्धोंके ज्ञानमें कारणता न मानी जाय बुद्धके ज्ञानक्षणके लिए तो इसका अर्थ यह होगा कि बुद्धका ज्ञान असर्वज्ञ हो जायगा अर्थात् वह सबको जानने वाला न कहलायगा, क्योंकि कारण अन्वय व्यतिरेकका अनुकरण न करे ऐसा नहीं होता। जो भी कारण होता है वह अन्वय व्यतिरेकका अनुकरण करने वाला माना गया है। कहा भी है कि विषय अकारण नहीं होता, ज्ञानमें जो भी विषय आ रहा हो ज्ञानका वह कारण माना जायगा। इस कारण दोष परिहारकी बात नहीं कह सकते।

अग्राह्यग्राहकत्व विशेषणके साथ अव्यभिचारी कार्यकारणभावमें एक संतानपना कहनेपर बुद्धज्ञानक्षणोंमें कार्यकारणभावकी असिद्धिका प्रसङ्ग—शंकाकार यदि यह कहते कि जिन ज्ञानक्षणों का ग्राह्य ग्राहक भाव न होनेपर अव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिचारी कार्य कारणभाव हो उनमें एक संतानपना माना गया है जैसे कि यहां देवदत्त और यज्ञदत्त दोनोंके जो ज्ञानक्षण हैं उनमें एक दूसरेके ज्ञानको ग्रहण नहीं कररहा तो उनमें अग्राह्यग्राहकता है ऐसी अग्राह्यग्राहकता हो और फिर हो अव्यभिचारी कार्य कारणभाव तब एक संतानपना मानो किन्तु दोमेंसे एक ही हो तो एक संतानपना नहीं मानो। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी अयुक्त है। इस कथनसे तो बुद्धके ज्ञानका पूर्वज्ञानसे भी एक संतानपना न बनेगा। क्योंकि बुद्धके ज्ञानने पूर्व ज्ञानका तो ग्रहण किया। तो वहां फिर एक संतानपना न बन सकेगा। बुद्धके ज्ञान द्वारा यदि उस हीका पूर्व ज्ञान अग्राह्य बन गया तो असर्वज्ञपना आ जायगा।

समनन्तरत्व होनेसे समनन्तर प्रत्ययकी बुद्धचित्तके साथ एक सन्तानता कहनेकी सदोषता—शङ्काकार कहता है कि जो पूर्व ज्ञानक्षण है अर्थात् समनन्तर प्रत्यय है वह उससे तो समनन्तर होनेके कारण बुद्धचितके साथ एक संतानपना बन जायगा, अर्थात् बुद्धका ज्ञान जो इस समय हो रहा है उससे पहिले जो बुद्धका ज्ञान चल रहा है वह तो समनन्तर है, इस कारणसे वहां बुद्ध चित्तके साथ एक संतानपना बन ही जायगा, याने उत्तरज्ञानक्षणका कारण पूर्वज्ञानक्षण है और वह एक धारा में एक संतानमें चल रहा है। वह बात तो स्पष्ट है इस कारण वहां उपालम्भ नहीं दे सकते। तो उत्तरमें पूछ रहे हैं कि बतलाओ पूर्वज्ञानक्षण उसका, समनन्तर कैसे हो गया? यदि कहो कि अव्यभिचारी कारणता होनेसे उसे पूर्वक्षण मान लिया याने निरंशवादमें पूर्वक्षणका पदार्थ कारण होता और उत्तरक्षणका पदार्थ कार्य होता तो चूंकि वह पूर्वक्षण वाला है, अव्यभिचारी कारण भी है, उस हीके बाद तो उत्तरज्ञान क्षण होता है, इस कारणसे उसमें समनन्तर मानना पड़ेगा। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि यों तो सारे पदार्थोंकी भी बुद्धज्ञानमें समनन्तरता आ जायगी। क्योंकि बुद्धज्ञानकी उत्पत्तिमें सारे ही पदार्थ कारण पड़ रहे हैं क्योंकि अब तो शङ्काकारने माना है कि सर्वज्ञ और सारे पदार्थ ज्ञानमें आ रहे हैं, सो यहाँ समनन्तरता बताते हो इस कारणसे कि चूंकि उत्तरक्षणका कारण है पूर्वज्ञानक्षण तो यों तो बुद्धके ज्ञानक्षणका जगतके सारे पदार्थ ही कारण हैं। तो सारे ही पदार्थोंमें बुद्धका समनन्तर प्रत्ययत्व कहलाने लगेगा। और ऐसा माननेपर फिर तो सारे पदार्थोंमें बुद्धके ज्ञानक्षण की एक संतानपना हो जायेगी। और, यों माननेसे अद्वैतवादका प्रसंग आ जायगा। सब कुछ एक बुद्ध ज्ञानक्षण ही है। उस हीकी संतानमें सारे पदार्थोंका विकास है। तो यों अपने हीं सिद्धान्तका विघात हो जायगा।

एकसंतानपना होनेपर पूर्वचित्तक्षण की उत्तरक्षणके प्रति कारणता की सिद्धि करनेकी भी निरन्वयवादमें अशक्यता—शंकाकारका यह कहना था कि बुद्धका जो पूर्वज्ञानक्षण है उससे और उसके ही ज्ञानक्षणसे एक संतानपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनता है क्योंकि जो पूर्व ज्ञानक्षण है वह समान्तररूप है। पूर्वरूप है अथवा एक प्रत्यात्रिरूप है। तो इसपर यह पूछा जा पहा था कि बुद्धके ज्ञानक्षणमें यह समनन्तरता कहांसे आ गई ? इस विषयमें एक हेतु दिया है शंकाकारने, उसका तो निराकरण कर दिया गया। अब दूसरा हेतु कह रहे हैं शंकाकार कि बुद्धके पूर्व ज्ञानक्षणमें समनन्तरता इस कारणसे है कि एक संतान होनेपर कारणरूप है। अर्थात् बुद्धके जितने भी ज्ञानक्षण चल रहे हैं उन सबमें एक संतान है और फिर कारणरूप है। अर्थात् पूर्वज्ञानक्षण उत्तर ज्ञानक्षणके प्रति कारण है और संतान एक है इसे उसकी समनन्तरता मान ली जाती है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा मानने पर तो अन्योन्याश्रय दोष आता है। जब समनन्तर प्रत्यय सिद्ध होले तब तो उसका एक संतान होनेके कारण कारणपनेकी सिद्धि होगी और जब एक संतान होकर कारण है वह पूर्वज्ञानक्षण यह सिद्ध होले तब उन दोनों ज्ञानक्षणोंमें पूर्व ज्ञानक्षण समनन्तर प्रत्यय है ऐसा सिद्ध हो सकता है। इस कारणसे बुद्धका पूर्वज्ञानक्षण समनन्तर प्रत्यय कहलायेगा।

एक संतानका तथ्य—अब कोई यदि ऐसी जिज्ञासा करे कि स्याद्वादियोंके यहां फिर एक संतान क्या कहलाती है ? तो उसे सुनो ! पूर्वकाल और उत्तरकालमें होने वाली जो अतिशयात्मक परिणतियां हैं उनमें कार्यकारणरूपसे अथवा उपादानोपादेयरूपसे जो अन्वय पाया जाता है उसे सन्तान कहते हैं। इन पूर्वोत्तरपरिणतियोंमें पर्याय तो हेतुरूप है और उत्तर पर्याय फलरूप है इस तरह तो इनमें कार्यकारणभाव और उपादानोपादेयभाव पाया जाता है तथा ये अपने अपने क्षणमें नवीनताको लिए हुए हैं सो यों अतिशयस्वरूप हैं। हेतुफल संज्ञाको प्राप्त जो पूर्वकाल भावी और उत्तरकाल भावी अवस्थायें हैं उनमें जो अन्वय है कार्य कारणरूपसे और उपादानोपादेयरूपसे, बस वही संतान कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जहां कोईसंतान शब्द कहे उसका अर्थ होगा एक द्रव्यपना तो उस संतानमें एकता है इस बातकी सिद्धि इस अनुमान प्रयोगसे होती है कि संतान कथंचित् एक ही है सन्तानपना होनेसे अथवा अन्वयरूपता होनेसे, नील लोहित आदिकका प्रतिभास करने वाले एक चित्रज्ञान सम्वेदनकी तरह जिस प्रकार नील लाल आदिका प्रतिभास करने वाले चित्रसंवेदनमें एकता है उसी प्रकार संतानमें भी एकता है। इस अनुमान प्रयोगमें जो एक चित्रसम्वेदनका उदाहरण दिया गया उस उदाहरणमें साध्य बराबर मौजूद है। क्योंकि शंकाकारने भी चित्रज्ञानको एकस्वरूप माना है। वैसे भी चित्रज्ञानको शंकाकार अद्वैत ही बताते हैं। तो यों किसी भी एक धारवाही अवस्थामें अन्वय है। संतान है वह एक द्रव्यत्वका लिङ्ग है चित्रज्ञानको इसी तरह एक माना है शंकाकार ने। अगर वहाँ चित्रज्ञानमें नीलपीत आदिकरूप उसके अवयवोंमें पृथक्त्वएकान्त लिया जाये, जो कि चित्रज्ञानमें प्रतिभासित हो रहे हैं। तो चित्रज्ञान न बन सकेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे कि पृथक्-पृथक् पीतरूप श्वेत आदिक अनेक रंगोंका विषयभूत जो अनेक संतान हैं उनका जैसे एक एक क्षण अद्वैतरूप नहीं होता चित्रज्ञानरूप नहीं होता, जान रहे हैं बहुतसे पुरुष, कोई कुछ कोई कुछ, तो उनमें एकता तो नहीं मान ली जाती, क्यों नहीं मानी जाती कि वहां पृथक्त्व पाया जाता, तो ऐसे ही इस चित्रज्ञा में प्रतिमासित होने वाले इस विषयको अगर पृथक्-पृथक् मान लिया जाय तो चित्रज्ञानका स्वरूप नहीं बनता।

क्षेत्रप्रत्यासत्ति कालप्रत्यासत्ति व भावप्रत्यासत्ति के कारण अनेक पदार्थोंमें ऐक्यके नियमकी सिद्धि—यदि शंकाकार यह कहे कि चित्रज्ञानके अवयवमें प्रत्यासत्ति अर्थात् निकटता विशेष है इस कारणसे चित्रज्ञान की एकता सिद्ध हो जाती है तो इसका उत्तर यह है कि वह प्रत्यासत्ति विशेष याने समीपता कथंचित् तादात्म्यको छोड़कर अन्य कुछ नहीं है। प्रत्यासत्ति अर्थात् निकटता चार रूपोंमें मानी जायगी। देश, काल, भाव और द्रव्य, अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तो उसमेंसे क्षेत्र प्रत्यासत्तिकी दृष्टिसे विचार करते हैं तो देखिये! कि क्षेत्र प्रत्यासत्तिमें शीत और गर्मी दोनों प्रकारकी बातें पायी जाती हैं। अर्थात् यहां तक शीत है और यहां गर्मी है, ऐसे अनेक अवसर आते हैं। तो देशकी निकटता। शीत और आताप ये दोनों पाये जा रहे हैं लेकिन उनमें ऐक्य तो नहीं हो गयामें कहीं ठंड और गर्मी एक ही तो नहीं हो जाते। इससे यह कहना कि क्षेत्र प्रत्यासत्ति से भी पदार्थोंमें भेद नहीं हो पाता। एक समय वाले अनेक पदार्थ पड़े हुए हैं अर्थात् उस एक ही समयमें दुनियामें अनन्त पदार्थ पड़े हुए हैं तो उन सब पदार्थोंके प्रति कालकी प्रत्यासत्ति तो आगई अर्थात् कालकीअपेक्षा सब पदार्थोंमें अनेकता है वही एक समय है, इतनी अधिक प्रत्यासत्ति है फिर भी उन समस्त पदार्थोंमें एकता तो न आ जायगी? इस कारण यह न कहा जा सकेगा कि काल प्रत्यासत्ति होनेसे पदार्थोंमें एकता आ जाती है। अब भाव प्रत्यासत्तिकी बात सुनो! भाव क्या? ज्ञानमें जो स्वरूप आया है अथवा नीलादिक आकार हैं तो ये ही भाव कहलाते! तो इन भावोंकी निकटता होनेसे यदि एक मान लिया जाय तो यहाँ यह दोष आता है कि देखिए! एक अर्थसे उत्पन्न एक अनेक पुरुषोंके ज्ञान हैं। क्षणिकवादमें ज्ञानकी उत्पत्ति विषयभूत कारणसे मानी गई है। तो एक पदार्थके बारेमें यदि ५० आत्माओंका ज्ञान हो रहा है तो ५० आत्मओंके ज्ञानमें भाव प्रत्यासत्ति तो आ गई। ज्ञानगत स्वरूप तो एक समान हो गया, क्योंकि एक पदार्थके विषयसे उन सबका ज्ञान उत्पन्न हुआ है, फिर भी उन ज्ञानक्षणोंमें एकता तो नहीं है। अनुभव भी बतलाता है कि ५० पुरुषों के जो ज्ञान हो रहे हैं वे उनके उनमें ही हो रहे हैं, उनमें एकता अथवा तादात्म्य नहीं है। तो भाव प्रत्यासत्तिसे भी एकताकी बात नहीं कही जा सकती।

द्रव्यप्रत्यासत्तिका तथ्य—अब रह गयी केवल द्रव्य प्रत्यासत्ति। इसपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचार करना है याने द्रव्य प्रत्यासत्तिसे परिणमनमें एकता आती है सो ठीक है, वह द्रव्यप्रत्यासत्ति है क्या चीज ? एक द्रव्यमें तादात्म्यरूप है वही द्रव्य है। उस हीमें वे पर्यायें चल रही हैं। तो यों द्रव्य प्रत्यासत्ति है अर्थात् पूर्व उत्तरकालभावी उन सब पर्यायोंमें वही एक द्रव्य तो है। यों द्रव्यप्रत्यासत्तिका अर्थ है कि एक द्रव्यके तादात्म्य रूप रहना सो ठीक ही है और इस तरह द्रव्यापेक्षासे ऐक्य मान लेना चाहिए जिससे कि चित्रज्ञानमें भी एकत्वका व्यवहार किया जा सके। वास्तविकता तो यह है कि जो चित्रज्ञान है वह उस एक पुरुषका एक परिणमन है इस कारण उस ज्ञानमें एकत्वकी बात कही जाती है। वह ज्ञान एक रूप है। भले ही उस ज्ञानपरिणमनमें अनेक पदार्थ प्रतिविम्बित हुए हैं फिर भी वह ज्ञान एक है, क्योंकि एक द्रव्यकी वह परिणति है।

एकता न मानकर भी एकता व्यवहारपद्धति बनानेमें अनिष्ठापत्ति— चित्रज्ञानमें कथंचित् एकता न मानकर भी एकत्वका व्यवहार घटित कर दिया जाय याने नहीं है एकपना लेकिन व्यवहार करदे एकपनेका तो इस तरह वेद्याकार और वेदकाकारमेंमें भी पृथक्त्वैकान्तका प्रसंग आ जायगा। अब तो एकताके बिना भी जब एकत्वका व्यवहार माना जाने लगा, वेद्य और वेदकाकार इनमें भी एकत्व न मान करके एकत्वका व्यवहार मानें तो ऐसे कहीं व्यवहार बन जायगा ? जिसमें स्वरूपतः भेद पड़ा हुआ है उनमें कल्पनावश एकत्व नहीं बन जाया करता है। वेद्याकारका अर्थ है कि ज्ञानमें जो जाना जा रहा है वह खुद ही जाना जा रहा है क्योंकि परमार्थतः एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें क्रिया नहीं होती। तो ज्ञानमें जो ज्ञानस्वरूप सकझा जा रहा है खुद ज्ञेयाकार परिणमन जाना जा रहा है वह तो है वेद्याकार और जो ज्ञान स्वरूप है उसे कहते हैं वेदकाकार। तो ये दोनों बातें चूंकि एक ज्ञानमें हैं, एक द्रव्य में हैं तो वास्तवमें एकद्रव्यपना होना एकत्वके व्यवहारका कारण है। लेकिन मूलमें एकत्व तो न माना जाय और एकत्वका व्यवहार कर लिया जाय तो यों तो वेद्य-वेदकाकारमें भी पृथकत्व एकांतका प्रसंग होगा। और, जब ज्ञेयाकार एवं ज्ञानाकार पृथक पृथक हो गए तो अब चित्रज्ञानका कोई स्वरूप न बन सकेगा। यदि शंकाकार ऐसा सोचे कि उन वेद्याकार और वेदकाकारोंमें यद्यपि स्वभावभेद पड़ा है तो भी उनका एक साथ उपलम्भ है अर्थात् वे एक साथ ही पाये जा रहे हैं, वेद्याकार और वेदकाकार एक ज्ञानमें एक ही समयमें पाये जा रहे हैं, इस कारण उनमें कथंचित् अभेद भेद मान लेना चाहिए तो सुनो ! क्षणिकवादी सैद्धान्तिको, इसी प्रकार तो एक संतानमें जो ज्ञान हो रहा है, जैसे कि चित्रज्ञानको एक संतान माना है शंका-कारने तो वहाँ जो एक संतानमें ज्ञान हो रहा है। और जितने भी ज्ञान होते जायेंगे उन सबमें समनन्तरकी उपलब्धि है, अर्थात् पूर्वज्ञानक्षणके बाद उत्तरज्ञानक्षण हो रहा है। इस कारणसे उनमें भी कथंचित् ऐक्य क्यों न माना जाय ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

कालप्रत्यासत्तिसे एक सन्तानत्व सिद्ध करनेका शङ्काकारका विकल्प प्रयास—यहाँ शङ्काकार कहता है कि कालकी प्रत्यासत्ति पाई जानेका नियम होनेसे उन ज्ञानक्षणोंमें एक संतानपना सिद्ध होता है, पर कहीं एक द्रव्यपना न बन जायगा। जैसे कि प्रदेशकी प्रत्यासत्ति पाये जानेका नियम होनेसे समुदायमें स्कंधमें एक संतान-पना अथवा समुदायपना बनता है पर कहीं एक द्रव्यपना न हो जायगा। जैसे कि सामने स्कंध पडे हैं, इनमें अनन्त परमाणु हैं और वे परमाणु भिन्न-भिन्न हैं। अब उन अनन्त परमाणूओंका समूह जो पिण्ड है एक समुदाय कह देना यह क्षेत्र प्रत्यासत्ति से कहा गया है अर्थात् उन प्रदेशी परमाणूओंकी अतीत निकटता हो गई, इस कारण से उसे समुदाय कहा गया है, पर इसके मायने यह तो नहीं हो जाता कि वह पिण्ड एक द्रव्य कहलाये ? इसी प्रकार जो एक संतानमें, अन्वयमें पूर्वापर क्षण आते हैं तो पूर्व अपर क्षणोंमें कालकी प्रत्यासत्ति है मायने इसके बाद ही यह हो, ऐसे कालकी निकटता होनेसे एक संतानपना बन जायगा, पर एक द्रव्यपना इससे सिद्ध न होगा। तो चित्रज्ञानमें जो एक संतानपना बन रहा है वह काल प्रत्यासत्तिसे बन रहा है। एक द्रव्य होनेके नातेसे न हो। अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि देखिये यदि एक द्रव्यपनाके कारण संतानकी कल्पना न मानी जाय तो देखिये ! क्षणिकवादियोंके यहाँ फिर बुद्धके ज्ञानक्षणमें और बौद्धोंके ज्ञानक्षणमें एक संतानपना आ पड़ेगा। बुद्धका ज्ञान सबको जानता है तो बौद्धोंके ज्ञानको भी जान लेता है अर्थात् जो बुद्धके उपासक हैं उनके ज्ञानको भी जान लेता है। अब ज्ञान जिन जिनको जानता है वे सब ज्ञानके कारण कहे जाते हैं। तो बुद्धज्ञानका कारण हुआ बोद्धोंका ज्ञान, और देखिये ! वे सब ज्ञान हैं काल प्रत्यासत्तिमें। एक ही समयमें हो रहे हैं इस कारणसे बुद्धके ज्ञान-क्षण और बौद्धोंके ज्ञानक्षणमें एक संतानपना आ जायगा पर ऐसा खुद मानते नहीं और न हो सकता है।

देशप्रत्यासत्तिसे एकत्व माननेपर शंकाकाराभिमत पंच स्कन्धोंमें एकत्वका प्रसंग—देखिये ! देशकी प्रत्यासत्तिके कारण स्कन्धमें समुदायपना मानने की बातपर सुनिये कि निरंशवादियोंके यहां ५ स्कन्ध माने गए हैं वे ५ स्कन्ध क्षेत्र प्रत्यासत्तिमें पाये जाते हैं मायने एक ही जगह मौजूद हैं तो उनमें फिर स्कन्ध माने गए हैं निरंशवादमें—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। रूप स्कन्धके मायने हैं रूप, रस, गंध, स्पर्शके परमाणु जो कि सजातीय अन्यसे अलग हैं और समस्त विजातीयोंसे अलग हैं और परस्परमें सम्बन्ध जिसका नहीं है ऐसा यह रूपस्कन्ध कहलाता है। निरंशवादमें रसक्षण, रसक्षण, ये सब भिन्न-भिन्न हैं। इनका परस्परमें सम्बन्ध माना नहीं, इनका परस्परमें सम्बन्ध नहीं माना। ये सब अपने कालमें स्वतन्त्र सत् कहलाते हैं। ये तो हुए रूप स्कण्ध और सुख दुःख आदिक जो वेदन हैं, अनुभवन है वे कहलाते हैं वेदना स्कन्ध। सविकल्प ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सब कहलाते हैं विज्ञानस्कन्ध। और नाम कर देनेका नाम है नाम अथवा संज्ञा और ज्ञान पुण्यपापकी जो वासना है उसे कहते हैं संस्कार स्कन्ध। अब ये सभी एक ही जगह तो पड़े हुए हैं। तो जब इनमें क्षेत्र प्रत्यासत्ति पाये जानेका नियम दिख रहा है तब ये सब भी एक स्कन्ध बन जायेंगे। फिर इन्हें ५ स्कन्ध ही क्यों कहा गया है ?

कथंचित् तादात्म्यके अतिरिक्त परमार्थ प्रत्यासत्तिका अभाव—शंकाकार कहता है कि अन्य प्रत्यासत्तिके द्वारा संतान समुदाय और साधर्म्य बन जायगा। यदि कालप्रत्यासत्ति विफल हो गयी। क्षेत्रप्रत्यासत्ति भी निष्फल हो गयी तो ऐसी कोई प्रत्यासत्ति मान ली जायगी, जिसके द्वारा एक संतान, समुदाय और साधर्म्य अर्थात् सदृशता बन जायगी, उत्तरमें कहते हैं कि देखिये ! ज्ञानके उन पूर्वोत्तर क्षणोंमें और एक देशमें रहने वाले परमाणुवोंमें और स्कन्धोंमें जिस प्रत्यासत्तिके द्वारा संतान और समुदाय सिद्ध कर रहे हो उस ही प्रत्यासत्तिके द्वारा उन सबमें कथंचित् ऐक्य क्यों न मान लिया जायगा। देखिये ! एक संतानमें चलने वाले ज्ञानक्षणोंमें अथवा परमाणुओंमें जो सदृशता पायी जा रही है वह एक कथंचित् तादात्म्यके सिवाय और किसी कारणसे नहीं पायी जा रही। एक संतानमें जो पूर्वापर अनेक ज्ञानक्षण उत्पन्न होते चले जाते हैं तो उनमें उसही तरहके ज्ञानक्षण चले जा रहे हैं अथवा एक संतानमें ही उत्पन्न होते जा रहे हैं, इसका कारण है कथंचित् तादात्म्य अर्थात् एक द्रव्यके साथ उनका तादात्म्य सम्बन्ध बना। पहिले जो जाना गया उसमें जो द्रव्य है, उसके आधारभूत जो द्रव्य है वही उत्तर ज्ञानका आधारभूत द्रव्य है। यों कथंचित् तादात्म्य होनेसे संतानकी सिद्धि होती है। तो उन सबमें जो कुछ साधर्म्य पाया जा रहा है वह कथंचित् तादात्म्यके बिना नहीं पाया जाता, जिससे कि काल प्रत्यासत्तिके पाये जानेका नियम बताकर एक संतानपनाकी व्यवस्था बनाई जा सके। एक संतानपनेकी व्यवस्था द्रव्य प्रत्यासत्तिसे है, कालप्रत्यासत्तिसे नहीं है, इसी प्रकार देश प्रत्यासत्ति पाये जानेके नियम वाले उन जानेपरमाणुओं और स्कंधोंमें जो एक स्कंध नामका समुदायपना माना जा रहा है वहाँपर भी कथंचित तादात्म्य अथवा इसमें सांकर्य के सिवाय अन्य कुछ कारण नहीं है।

एकत्वका सर्वथा लोप कर देनेपर साधर्म्यका भी अभाव—यदि एकत्व का सर्वथा लोप कर दिया जाय तो एक संतानपना होनेका कारणभूत और समुदायपनाके कारणभूत सदृशताकी उत्पत्ति नहीं बन सकती, क्योंकि कथंचित् भी एकत्व न माना जाय तो उस एकत्वसे शून्य पदार्थोंका जो सादृश्य है ऐसा सादृश्य तो अन्य संतानोंमें वा नाना समुदायोंमें भी पाया जाता है। एकत्व तो माना नहीं, माना केवल सादृश्य ही अथवा काल प्रत्यासत्ति और देशप्रत्यासत्ति, तो जो भिन्न-भिन्न पुरुष हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें काल प्रत्यासत्ति तो है और जो नाना समुदाय पड़े हैं उनमें भी कालप्रत्यासत्ति है, तब उनमें भी सादृश्य या एक संतानपना अथवा समुदाय स्कंध मान लीजिए। पर ऐसा तो खुद शङ्काकारने भी माना नहीं। तो सिद्ध होता है कि जिसको संतान सिद्ध कर रहा है शङ्काकार उन सबमें कथंचित् एकत्व पड़ा हुआ है और उस कथंचित् एकत्वके कारण एक संतानपना सिद्ध किया जा सकता है।

कथंचित् एकत्व माने बिना परलोककी सिद्धिकी अशक्यता—जैसे कथंचित् एकत्व माने बिना एक संतानकी सिद्धि नहीं होती, इसी प्रकार एकत्वका अपलाप करनेपर परलोकके व्यवहारकी भी सिद्धि नहीं होती। कथंचित् एकत्व न माननेपर परलोकका व्यवहार नहीं बन सकता। परलोकका व्यवहार इसी बलपर ही ही तो बना हुआ है कि जो जीव पहिले भवमें था वह जीव उस भवको छोड़कर अन्य भवमें पहुंच गया, तो यही तो परलोक बना। अब एकत्व तो माना नहीं जा रहा। जब वह एक जीव नहीं है, जिसके पहिले भवको छोड़ा और अगले भवमें जन्म लिया, जब ऐसा कोई एक द्रव्य नहीं है तो परलोकका व्यवहार कैसे बनेगा? यहां शंकाकार कहता है कि वर्तमान जन्मका अन्य जन्मके साथ एकत्व कैसे बन जायगा? जिससे कि परलोकका व्यवहार यही कहकर तो सिद्ध कर रहे हो कि एक जन्मका दूसरे जन्मके साथ एकत्व है और एकत्व न माना जाय तो फिर परलोकका व्यवहार न बनेगा, तो मरकर नया जन्म पानेका व्यवहार न बनेगा सो यह बात भी कैसे युक्त है? भला एक भवका दूसरे भवके साथ एकत्व भी हो सकता है क्या? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि हाँ एक जन्मका अगले जन्मके साथ कथंचित् एकत्व है, उसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। वह एकत्व है द्रव्यप्रत्यासत्तिसे। जिस ही जीव ने पहिला भव छोड़ा उस ही जीवने नया जन्म लिया। ऐसा एकत्व होनेपर ही परलोकका व्यवहार बनता है। और, इस दृष्टिसे एक जन्मका दूसरे जन्मके साथ एकत्व सिद्ध होता है। और यों कथंचित् एकत्वरूपसे प्रतिभास हो ही रहा है।

स्वभाव भेद होनेपर भी एकत्वपरिणामकी अप्रतिषेध्यता—जैसे चित्रज्ञानमें अनेक प्रतिभास होते हैं तो वे माने जा रहे हैं कि हाँ नाना आकार बन रहे हैं फिर भी वह चित्रज्ञान एक है। तो जैसे एक ज्ञानमें आये हुए अनेक प्रतिभास विशेषों का परस्परमें स्वभावभेद हैं तिसपर भी जैसे उन ज्ञानोंमें एकत्वका परिणाम स्वभाव से माना है और निर्विरोध माना है उसी प्रकारसे परलोक सुख दुःख आदिकमें जो एक संतान है, अन्वय चल रहा है सो वह भी स्वभाव भेदका उल्लंघन करके अर्थात् स्वभाव भेदको दृष्टिमें न रखकर स्वामीकी तरह खुद हीमें वह सब संतान वर्त रहा है जिसको परमार्थ एकत्व कहो, आत्मा कहो, सत्त्व कहो, जीव कहो, किन्हीं भी शब्दोंमें कही जाय, वहाँपर परमार्थ एकत्व बराबर चल ही रहा है उस हीको संतान कहो अथवा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्वय कहो, बात वहाँ द्रव्य प्रत्यासत्तिकी ही है अर्थात् वह द्रव्य एक है जिसमें कि संतान आदिक सिद्ध किए जा रहे हैं। संतान और अन्वय कहीं भिन्न-भिन्न जीवमें अन्यमें सिद्ध नही किए जा सकते, क्योंकि यदि अन्य अन्य जीवोंके ज्ञानक्षणमें संतान सिद्ध कर दिया तो अब उसका विवेक करना अशक्य हो जायगा। यह किसका ज्ञान है ? इसकी धारा कहाँ है ? वे किस किसका स्मरण रखेंगे, तो यह सब विवेचन अशक्य हो जायगा और विरुद्धत्व, वैयधिकरण्य आदिक दोष भी आ जायेंगे। तो जैसे एक ज्ञानमें अनेक प्रतिभास हो रहे हैं तो उन स्वभाव भेदोंका उल्लंघन करके जैसे एक ज्ञानपना मान लिया गया है इसी प्रकार एक जीवमें नाना परिणमनोंका स्वभाव भेद न देखकर एक संतान एक एकत्व देखा मान लेना चाहिये।

पृथक्त्वैकान्तकी समीक्षाकी प्राकरणिकता—इस अध्यायमें अद्वैत एकान्त और पृथक्त्व एकान्तका विचार चल रहा है। जिनका सिद्धान्त था कि सारा विश्व एक अद्वैत मात्र है, उस अभेदवादका खण्डन कर दिया गया था। अब यहाँ पृथक्त्व एकान्तका निराकरण चल रहा है। पृथक्त्व एकान्तके मायने एक दूसरेसे एकान्ततः अलग-अलग रहना, इसे निरंशवाद भी कहते हैं। जैसे परमाणुमें रूप, रस, गंध, क्षण, स्पर्शक्षण नामके पृथक-पृथक पदार्थ माने गए हैं। उनका यह कहना है कि जब ज्ञानमें पृथक्त्व स्वरूपसे समझमें आता है तो वहाँ पृथक्त्व क्यों न होगा ? पृथक्त्व ही हैं तभी पृथकरूपसे समझमें आता है। रूपका लक्षण और है रसका लक्षण और है। इस तरह। जब यह पृथकरूपसे समझमें आता है, तो वे पृथक ही हैं, उनको एक नहीं कह सकते। और जो लोग एक कहते हैं उन्हें भ्रम हो गया है। उनके अविद्याका उदय है इस कारणसे उनको एक रूपमें देखा करते हैं। तो ऐसे पृथक्त्वैकान्तके सम्बन्धमें पहिले ३–४ दूषण बताये गए थे। वे कुछ दूषण तो नैयायिक और वैशेषिकके पृथक्त्व एकान्तके लिए थे। पृथक्त्व एकान्तवादी तीन दार्शनिक हैं। नैयायिक, वैशेषिक और बौद्ध। तो नैयायिकवैशेषिकके यहाँ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष आदिक पृथक-पृथक पदार्थ माने हैं। उनका भी यहीं कहना है कि जब ज्ञानमें पृथक स्वरूपसे कुछ समझमें आता है तो वे पृथक क्यों न होंगे ? इसी बलपर सामान्य अलग पदार्थ है, विशेष अलग पदार्थ है, द्रव्य अलग है, गुण अलग है। तो गुणोंमें एक पृथक्त्वनामका भी गुण माना गया है। तो उनसे पूछा गया था कि जिन चीजों को तुम आपसमें पृथक पृथक कहते हो उन दो या अनेक चीजोंसे पृथक नामका गुण भी पृथक है या मिला है ? अगर पृथक्त्व गुण अलग है उनसे तो इसके मायने है कि वे एक हो गए। तब पृथक नहीं रहे वे। उनमें तो वे द्रव्यगुण एक हो गए। तो इसमें दार्शनिकके सिद्धान्तका विघात है। वे एक मानते नहीं। तो जब पृथक्त्व गुण द्रव्य गुणसे निराला है तो इसके मायने है कि द्रव्य गुण एक हो गए क्योंकि पृथक्त्व तो उनमें रहा नहीं, ऐसा वे एक मानते नहीं। तो उनके ही कथनसे उनके ही कथनमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विरोध का जायगा। और, यदि कहो कि पृथक्त्व गुण पृथक नहीं है, उन दोनोंमें मिला है तो यही धर्म तो बाधित दोष हो गया। पृथक्त्व एकान्तमें दूषण दिया है कि यदि ऐसा पृथक्त्व एकान्त मानोगे तो न संतान बनेगा, न समुदाय आदिक। क्योंकि एक जीव कुछ माना ही नहीं, भिन्न-भिन्न क्षण मान लिए। इस दूषणको बताकर अब एक दूसरा दूषण और आचार्य देव दिखलाते हैं :

सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत् ।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥ ३० ॥

पृथक्त्वैकान्तमें सर्व अन्तस्तत्त्व बहिस्तत्त्वका अभाव हो जानेसे शून्यताका प्रसंग—पृथक्त्वैकान्तकी हठ करने वाले शंकाकार यह बतायें कि ज्ञेयसे ज्ञान वे भिन्न मानते हैं तो ज्ञेयसे ज्ञान क्या सत्त्वस्वरूपसे भी भिन्न है ? अर्थात् ज्ञानमें और ज्ञेयमें दोनोंमें सत्त्व तो माना ही गया है। तो जब दोनोंमें सत्त्व पाया जा रहा तो सत्त्वकी अपेक्षासे ही सही ज्ञान और ज्ञेय पृथक न रहे। तो ज्ञान और ज्ञेय यदि सत्स्वरूपसे भी भिन्न हो जायें क्योंकि भिन्नताका एकान्त कर रहे ना। कुछ भी समझमें आया चलो कह दो बिल्कुल भिन्न है, ऐसा उनका नियम बन गया है। तो ज्ञेयसे ज्ञान यदि सत्त्वस्वरूपसे भी भिन्न हो गया तो दोनों असत् हो गए। न ज्ञान सत् रहा, न ज्ञेय, क्योंकि सत्त्व स्वरूपसे दोनोंको भिन्न मान लिया है। तो ज्ञान क्या रहा ? तो हे प्रभो ! जो तुम्हारे शासनसे द्वेष रखते हैं अर्थात् जो स्याद्वाद शासनको नहीं मानते हैं उनके यहां न अन्तरंगतत्त्वकी सिद्धि होगी और न बहिरंगतत्त्वकी सिद्धि होगी। अन्तरंग तत्त्व माना गया है ज्ञान और बहिरंगतत्त्व माना गया है विश्वके समस्त पदार्थ। तो पृथक्त्व एकांतकी हठ करने वालोंके यहां सर्वशून्य हो जायगा। इसी बातको विद्यानन्दी आचार्य स्पष्ट कर रहे हैं कि ज्ञान और ज्ञेयको इस पृथक्त्व एकांतवादीने भिन्न भिन्न माना है। नील पीत आदिक ये तो हैं उसके पदार्थ। पदार्थ निरंशवादियोंके यहां कुछ भी चीज नहीं है। नीलक्षण पीतक्षण, गंधक्षण स्पर्शक्षण इन सबका मेल समझ रखा है मिथ्या बुद्धि वालोंने उसको वे परमाणु कहते, स्कन्ध कहते, पदार्थ तो यह ही है। जो कुछ समझमें आया वही पदार्थ। तो इस तरह जो पृथक्त्व एकांत मानने वाले हैं वे यह बतलायें कि ज्ञेयसे ज्ञान भिन्न माना गया है तो क्या सत् सामान्य स्वरूपसे भी भिन्न है याने ज्ञेयमें सत्त्व है और ज्ञानमें सत्त्व नहीं है क्या इस तरहका भिन्न है कि एकमें सत्त्व हो और एकमें न हो ? वह यदि ज्ञेयसे ज्ञान सत्तात्मकतासे भी रहित है, भिन्न है तो दोनों प्रकारसे अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय दोनों ही असत् हो जायेंगे, क्योंकि सत्ताको निराला कह दिया। ज्ञान और ज्ञेयमें जब ज्ञानका असत्त्व हो गया तो ज्ञेयका भी असत्त्व हो जायगा क्योंकि ज्ञान ज्ञेय परस्पर अविनाभावी हैं। ज्ञान नहीं तो ज्ञेय क्या ? भले ही पदार्थ रहें पर वे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान नहीं कहला सकते। जब ज्ञान नहीं है और इस तरह बहिरंग और अन्तरंग पदार्थ कुछ भी किसी भी प्रकारसे ज्ञेय नहीं हो सकता।

ज्ञान अज्ञेयका सद्विशेषतासे पार्थक्य माननेपर शून्यताका प्रसंग— अब यहां शंकाकार कहता है कि ज्ञेय ज्ञान सद्विशेषसे भिन्न है सो बात सभी मानते हैं। सद्विशेष कहते हैं आवान्तर सत्त्वको सद्विशेष स्वलक्षण तो वस्तुका स्व ज्ञेयसे ज्ञानका असत्त्व न बन जायगा। ज्ञानमें असत्त्वकी प्रसक्ति नहीं है। और इसके मायने यह न होगा कि ज्ञानमें दूसरा सत्त्व आ जाय। दूसरे सत्त्वके मायने हैं प्रमेयपना। इसे कहते हैं सदन्तरपना। अन्तरका अर्थ है दूसरी चीज अर्थान्तर। तो अन्तरका अर्थ है अन्तर। तो ज्ञानमें असत्त्वकी बात तो नहीं आती। मगर ज्ञानमें सदनन्तरता भी नहीं आती। सदनन्तरताका अर्थ है कि ज्ञान है प्रमाण। ज्ञान ज्ञान है। तो ज्ञान को छोड़कर अन्य सत् माना प्रमेय तो प्रमेय नहीं होता ज्ञान। ज्ञानक्षण ज्ञान ही रहता है। तो उसमें सदनन्तरता भी नहीं आती। जैसे कि घटसे पट भिन्न है तो घटसे पटान्तरका भेद होनेपर भी पटमें पटान्तरका भी तो अभाव है। जैसे घड़ा कपड़ेसे रहित है मगर वह कपड़ा भी तो अन्य कपड़ेसे रहित है। इस तरहसे जैसे पटमें पटान्तरताका अभाव है। इसी तरह ज्ञान सत्में सदनन्तरताका भी अभाव है। सदृशताका अर्थ है प्रमेय होना। तो जैसे एक कपडेमें दूसरा कपड़ा नहीं है इसी प्रकार एक ज्ञानसत्में दूसरा सत् न घुसेगा अर्थात् वह ज्ञान प्रमेय न बन जायगा। और भी सुनो— जो सत् सामान्य है, सो समस्त सत्त्व विशेषोंमें असत्त्व व्यावृत्तिमात्र है। यह सब शंकाकार ही कहे जा रहा है कि सत्त्व सामान्य अवस्तु है। एक स्वलक्षण ही वस्तु है यह सत्त्व सामान्य तो असद्व्यावृत्ति कहलाता है। जैसे कि गौका अर्थ सीधा वह दूध देने वाली गाय नहीं हैं दुनियामें उन सबसे निराला है यह। इसे कहते हैं अगोव्यावृत्ति। किन्तु जो जो गाय नहीं है उन सबका यहां परिहार है। यह अर्थ है गायका। सीधा गाय अर्थ नहीं है। इसी तरह सत् सामान्यका अर्थ यह है कि असत्त्व व्यावृत्ति है कोई सीधा सत्त्व होवे सो नहीं। तो समस्त सद्विशेषोंमें असत्त्व की व्यावृत्ति है इतना ही अर्थ है सत् सामान्यका। अब उसके बारेमें यह पूछा कि बतलाओ ज्ञेयसे ज्ञान क्या सत्तादिकतासे भी भिन्न है या अभिन्न है ? जब सत्तात्मकता अवस्तु सिद्ध हो गई, सत्त्व सामान्य कोई चीज ही नहीं है तो उसका नाम लेकर प्रतिषेध आदिक भी तो नहीं कहे जा सकते हैं। तो उस अवस्तुसे भिन्न है या अभिन्न है यह प्रश्न उठना ही न चाहिए, क्योंकि विचार जितना भी चलेगा वह वस्तुके सम्बन्धमें चल सकता है। अवस्तुमें क्यों चलेगा। और सत्तामात्र है अवस्तु।

सद्विशेषत्व व असद्व्यावृत्तिके मन्तव्यमें वस्तुकी विधिप्रतिषेधात्मकताकी सिद्धि होनेसे ज्ञान व ज्ञेय दोनोंकी वास्तविकताकी सिद्धि—शंकाकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहता है कि सत्सामान्यसे व्याबृत्त जो ज्ञान है वह ज्ञान ज्ञेय ज्ञेय होनेसे यद्यपि सत्तात्मकतासे व्याबृत्त है लेकिन परमार्थ सत्त्वका ज्ञानमें विरोध नहीं है, अतएव यह उपालम्भ नहीं दिया जा सकता है जो स्याद्वादियोंने दिया है कि शंकाकार बताये कि ज्ञान ज्ञेयसे क्या सदात्मकतासे भिन्न है ? और इस तरह भिन्न होनेपर दोनों ही असत् हो जायेंगे । न ज्ञान रहेगा न ज्ञेय, यह उपालम्भ देना युक्त नहीं है। अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि सत्त्व सामान्यका अभाव माननेपर अथवा सत्त्व सामान्यको काल्पनिक माननेपर तो सद्विशेष याने स्वलक्षणका भी अभाव हो जायगा । यदि सत्त्व सामान्य नहीं माना जा रहा तो सत्त्व विशेष, स्वलक्षण या आवान्तर सत्त्व भी न माना जा सकेगा और फिर भी मानोगे सद्विशेषोंको तो वे भी काल्पनिक हो गए । जैसे सत्त्व सामान्य काल्पनिक मान लिया इसी प्रकार सद्विशेष भी काल्पनिक हो जायगा । क्योंकि सत्त्व विशेषका भी अर्थ क्या है ? असत्त्वव्यावृत्ति जैसे कि सत्त्व सामान्यका क्षणिकवादी यह अर्थ करते हैं कि असत्त्वव्यावृत्तिका नाम है सत्त्वसामान्य इसी प्रकार सत्त्व विशेष भी इसी नामसे हो जायगा अर्थात् असत्त्व व्यावृत्तिका नाम है सद् वशेष । तो उसका जो असत्त्वव्यावृत्ति है नही वस्तुस्वभाव बनेगा अन्यथा खरबिषाणका भी सत्त्व बन बैठेगा । खरविषाणके मायने हैं गधेके सींग । क्योंकि खरका अर्थ है गधा, विषाणका अर्थ है सींग । खरविषाणका अर्थ है अखरविषाणसे व्याबृत्ति । अखरविषाणसे व्याबृत्ति मायने खरविषाणका सत्त्व है क्योंकि असत्त्व व्यावृत्तिका नाम सत्त्व मान रखा है । अब तो ज्ञान और ज्ञेयमें जो असत्त्वव्याबृत्ति है वह वास्तविक है क्योंकि सद्विशेष होनेसे । कोई वास्तविक नहीं है । और ऐसा स्याद्वादियोंने माना ही है कि प्रत्येक पदार्थ विधि प्रतिषेधात्मक हैं । असत्त्व अपने स्वरूपसे है असत्त्वसे नहीं है । तो ज्ञान और ज्ञेयमें असत्त्वव्याबृत्ति वास्तविक है सद्विशेष होनेसे । जिसकी असद्व्यावृत्ति है वास्तविक नहीं हैं वह सद् विशेष ही नहीं है । जैसे वंध्यापुत्र । उसमें असत्त्वका परिहार वास्तविक तो नहीं है और ज्ञान और ज्ञेय है सद्विशेष, इस कारणसे इसकी असद् व्यावृत्ति वास्तविक है । केवल व्यतिरेकी हेतुसे ज्ञान ज्ञेयकी वास्तविकता सिद्ध होती है ।

सत्सामान्यके न माननेपर सद्विशेषके अभावका भी प्रसङ्ग—इस प्रसङ्गमें पृथक्त्वैकान्तके सिद्धान्त वालोंसे यह कहा जा रहा है कि तुम हरएक तत्त्वको पृथक पृथक बताते हो, ज्ञान ज्ञेय सभी पृथक हैं तो यह बताओ कि ज्ञेयसे जो ज्ञान पृथक है तो क्या सदात्मक रूपसे भी पृथक है याने ज्ञेयमें सत्त्व हो और ज्ञानमें न हो तो तभी तो ज्ञेयसे ज्ञान भिन्न रहता है । तो इस तरह यदि सदात्मकता रूप ज्ञेयसे ज्ञानको भिन्न कहते हो तब ज्ञान सत् न रहा, असत् हो गया और जब ज्ञान असत् हो गया सो ज्ञेय भी असत् हो गया, क्योंकि ज्ञेय शब्द बना है ज्ञानकी अपेक्षा रखकर । इस सम्बन्धमें ये पृथक्त्वैकान्तवादी उपचारसे ज्ञानको सत् कहने लगे हैं । उनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहना है कि सत् तो सामान्य है और सामान्य है सो अवस्तु है । ज्ञानको सत् इस तरहसे कहा जा सकेगा कि उसमें असद्व्यावृत्ति है मायने सत्ताका परिहार है। इस कारणसे ज्ञानको सत् कहा जाता है। तो इसके उत्तरमें कह रहे हैं कि चलो, असद् व्यावृत्ति ही सही पर यह भी तो वास्तवमें है कि नहीं असद्व्यावृत्ति ? तो वास्तवमें है, क्योंकि असद्व्यावृत्तिको भी मात्र काल्पनिक ही मान लिया जाय तो असद्व्यावृत्ति भी काल्पनिक हो गया, तत्त्व न रहा। तब उपचारसे भी सत् कहनेका अवकाश न रहेगा। इसी विषयको व्यतिरेकी हेतु बताकर सिद्ध किया गया था कि ज्ञान और ज्ञेयमें असद्व्यावृत्ति वास्तविक है क्योंकि सद्विशेष होनेसे। ज्ञान भी एक विशेष सत् है इस कारणसे असत्की व्यावृत्ति दोनोंमें वास्तविक है। जिन पदार्थोंकी असद्व्यावृत्ति वास्तविक नहीं होती वे पदार्थ सद्विशेषरूप हो ही नहीं सकते। जैसे कि बंध्याका पुत्र और ज्ञान ज्ञेय है सद्विशेष ! इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान और ज्ञेयमें असद् व्यावृत्ति वास्तविक है। इसी प्रकार व्यतिरेकी हेतु द्वारा असद्व्यावृत्तिको वास्तविक सिद्ध करनेके लिए अब अन्वयी हेतुसे असद्व्यावृत्तिको वास्तविक कह रहे हैं। देखिये जहां असद्व्यावृत्ति वास्तविक है, जिस पदार्थमें असत्का परिहार परमार्थतः है वहां सत् सामान्य वस्तु है। जहां असत्का परिहार है वही तो सत् सामान्य है। यदि सत् सामान्य रहितमें असद् व्यावृत्ति की बात करने लगोगे तो सत् सामान्य रहित तो वन्ध्यापुत्र है, वहाँ तो सत्ता सामान्य भी नहीं है। तो सत्सामान्य रहित बंध्यापुत्रमें भी असद्व्यावृत्ति बन जानी पडेगी। लेकिन जब सत्सामान्य रहित बंध्यापुत्रमें असत् व्यावृत्ति वास्तवमें नहीं है तो इससे सिद्ध होता है कि असद् व्यावृत्ति वास्तविक जहाँ हो वहाँ सत्सामान्य वस्तु अवश्य है। इस प्रकार ज्ञेयसे ज्ञानको वास्तविक सत्सामान्य रूपसे अगर भिन्न मान लिया जाय तो सद्विशेष रूपसे भी भेद हो जायगा अर्थात् आवान्तर सत्त्व न रहेगा। यदि अस्तित्व सामान्यसे भेद कर दिया कि ज्ञानमें सत्-सामान्य नहीं है तो सदविशेष भी न रहेगा।

पृथक्त्वैकान्ताग्रहमें अन्तर्ज्ञेय वहिर्ज्ञेय सबके अभावका प्रसंग—निरण्वय वादी सद्विशेषको तो मानता है पर सत्सामान्यको नहीं मानता। जो जो स्वलक्षण हैं वे विशेष कहलाते हैं। आवान्तरसत्त्व, स्वलक्षण, विशेष इन सबका एक अर्थ है। तो सत्सामान्य न माननेपर सद्विशेष भी न बन सकेगा। सो इस तरह ज्ञान और ज्ञेय दोनों असत् सिद्ध हो जायेंगे इस सम्बन्धमें इतना समझ लेना चाहिए कि ये शंकाकार स्पष्टतया ज्ञानको सत् भी नहीं मानते और असत् भी नहीं मानते। असत् यों नहीं है कि उसमें असद्व्यावृत्ति है और सत् यों नहीं है कि सत् सामान्य तो अवास्तविक चीज है। वस्तुमें ही नहीं है। इस तरह ज्ञानको असत् नहीं मानते शंकाकार लेकिन सत् सामान्यरूपसे भेद मान लेनेपर सत् सामान्यसे भी वह ज्ञान पृथक् हो गया तो ज्ञान असत् बन जायगा। तो जो यह नहीं चाहते कि ज्ञान असत् हो जाय तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनको मान लेना चाहिए कि उस ज्ञानका सत्सामान्यसे तादात्म्य है और ऐसा स्वीकार करना ही पड़ेगा ? उनके सिद्धान्तमें भी ज्ञान और ज्ञेय क्या है ? ज्ञेय तो कहलाता है विषय और ज्ञान कहलाता है विषयी। जो विषयको ग्रहण करे उसे विषयी कहते हैं तो अब विषयी और विषयमें कथंचित् शब्दभेद माना ही गया है। विषय तो होता है ग्राह्याकार और विषयी होता है ग्राहकाकार। तो ग्राह्याकार और ग्राहकाकाररूपसे ज्ञान और ज्ञेयमें विषयी और विषयमें कथंचित् स्वभाव भेद है फिर भी सद्‌आदिकरूपसे तो उनमें तादात्म्य है। जैसे कि ज्ञानाकारका विषयाकारमें तादात्म्य है। जैसे कि ज्ञानाकारको विषयाकारमें तादात्म्यरूप माना है, ज्ञानमें जो निज ज्ञेयाकार है वह तो ज्ञानसे तादात्म्यसम्बन्ध रखता है। बाह्य ज्ञेयकी बात नहीं कह रहे बाह्य ज्ञेयको तो शंकाकारने कारणरूप माना है और बाह्य पदार्थोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानी है। लेकिन बाह्य पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर ज्ञानमें जो ज्ञेयाकार आया है उसका तो ज्ञानाकारमें तादात्म्य है। तो लक्षण तो जुदा है, ज्ञेयाकारका स्वरूप अन्य है, ज्ञानाकारका स्वरूप अन्य है। तो यों दोनोंमें स्वभावभेद होनेपर भी उनमें जैसे तादात्म्य माने बिना काम न चला ऐसे ही ज्ञान और ज्ञेयमें स्वरूपभेदहोने पर भी सदात्मकरूपसे अभेद मानना ही पड़ेगा। ज्ञेय भी सत् है और ज्ञान भी सत् है। अन्यथा अर्थात् सत्तादिकरूपसे भी ज्ञान ज्ञेयमें तादात्म्य न माना जाय अर्थात् एक जातिके न माने जायें, सत् ज्ञान भी है सत् ज्ञेय भी है, इस तरहका सिद्धांत न माना जाय तो ज्ञान अवस्तु ही बन जायगा। ज्ञेयमें तो सत्त्व माना है और ज्ञानमें नहीं मानते तो ज्ञान अवस्तु बन गया। जैसे आकाश पुष्प। आकाशपुष्पमें सदात्मकतारूपसे सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् आकाशपुष्प सत् नहीं है। तो अवस्तु ही तो हुई। इसी तरह ज्ञानको भी यदि सदात्मकतासे पृथक मान लिया जाय तो ज्ञान अवस्तु बन गया। और जब ज्ञान अवस्तु हो गया, ज्ञानका अभाव हो गया तो बाह्य ज्ञेय और अन्तरज्ञेय तो ज्ञानकी अपेक्षासे ही कहलाते हैं। इससे यह दूषण ठीक ही है कि पृथक्त्वैकान्त मानने वाले क्षणिकवादियोंके यहां न ज्ञान रहेगा, न ज्ञेय रहेगा। जैसे कि वैशेषिक सिद्धान्तमें भी न ज्ञान रहा और न ज्ञेय रहा।

शब्दवाच्य होनेसे सामान्यमें अवास्तविकताकी शंका—अब यहाँ क्षणिकवादी यह आशंका कर सकते हैं कि हम क्षणिकवादियोंके लिए यह सामान्य तो है, परन्तु वह सामान्य शब्दके द्वारा वाच्य है, इस कारण वास्तविक नहीं है। जो जो बातें शब्दके द्वारा कही जा सके वे चीजें वास्तविक नहीं होती। जो वास्तविक तत्त्व है, स्वलक्षण है वह तो निराकार दर्शनमें आयगा, पर शब्दों द्वारा न आयगा। तो सामान्य है तो जरूर, मगर शब्द द्वारा वाच्य न होनेसे वास्तविक नहीं है। वह उतना ही सत् है कि असद् व्यावृत्तिसे समझ लो, पर स्पष्ट सत् नहीं है, क्योंकि वह शब्दके द्वारा कथनमें आता है। इसपर दूषण देते हुए अब आचार्यदेव कहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते ।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः ॥ ३१ ॥

सामान्यको ही अभिधेय माननेपर सकलोपदेश वचनके भी मिथ्यापनेकी प्रसक्ति—जिन क्षणिकवादियोंके यहां ऐसा माना गया है कि वाणी तो सामान्य अर्थका विषय करने वाली है, वाणीके द्वारा विशेष नहीं कहा जा सकता, वस्तुका स्वलक्षण तो विशेष है और सामान्य काल्पनिक है और वाणीके द्वारा सामान्य कहा जा सकता हैं तो ऐसा आग्रह करने वालेके यहां यह आपत्ति आयी कि सामान्य तो अवस्तु है । और शब्द जितने कहेंगे वे अवस्तुको कहेंगे । तो इसके मायने है कि सारी वाणी झूठ है, जितने भी शास्त्रोंमें शब्दोंका प्रयोग है वह सब झूठ हो गया, क्योंकि शब्द कहते सामान्यको और सामान्य होती हैं अवस्तु । तो जो लोग वाणीका सामान्य अर्थ मानते हैं कि वाणीका सामान्य ही अर्थ है वही अभिधेय है याने वचनों द्वारा कहा जा सकता है । उस वाणीके द्वारा विशेष नहीं कहा जा सकता, ऐसा जो कोई मानते हैं उनके यहां सारी वाणी झूठ हो जायगी । सो ऐसा उन्होंने भी नहीं माना । वे अपने सिद्धान्तके शब्दोंको तो सत्य मानते ही हैं । जो शंकाकारके गुरुजनों ने शास्त्र रचा उसको तो शंकाकार मानते ही हैं । लेकिन अब तो सारी वाणी झूठ हो जायगी, क्योंकि सामान्य तो वास्तविक है नहीं और शब्द कहते हैं सामान्यको ही । तो यह आपत्ति आती है ।

सामान्यकी अभिधेयताके व विशेषकी अनभिधेयताके कारणका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—यहां शंकाकार कहता है कि शब्द सामान्यको ही कह सकते हैं, इसमें युक्ति यह है कि जो विशेष है, पदार्थोंके स्वलक्षण हैं उनका संकेत ही नहीं किया जा सकता । दृष्टिमें जो पदार्थ आया है उसमें काल्पनिक बातें समझमें आयी है । क्या उन सबके कोई नाम धर सकता है ? तो विशेषोंका संकेत ही नहीं बनाया जा सकता । विशेष तो अनन्त है, उनको संकेतमें लेना अशक्य है । शब्दों द्वारा उन सब विशेषोंका कथन कर देना यह अशक्य है, क्योंकि विशेष अनन्त हुआ करते हैं । तो विशेषोंका संकेत नहीं बन सकता उनका कथन भी नहीं होता । जैसे कि वैशेषिक दर्शन याने पदार्थोंमें स्वयं पाया जाने वाला जो स्वलक्षण है, असाधारण नहीं है उसके दर्शनमें जैसे उस विशेषका प्रतिभास होता है ऐसे ही शब्दजन्य विधिविशेषका प्रतिभास नहीं होता । तो शब्दविधिमें विशेषका प्रतिभास न होनेसे सिद्ध हुआ कि शब्दों द्वारा विशेष अभिधेय नहीं होता । दूसरी युक्ति यह है कि विशेषका दर्शन तो पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा रखता है याने जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है, निराकार दर्शन है, प्रत्यक्ष प्रमाण है वह पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षासे होता है याने ज्ञानकी उत्पत्ति के कारण पदार्थ है । पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है मगर यह बात शब्दविधिमें नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है । शब्दजन्य ज्ञान पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा नहीं करता तभी तो शब्द द्वारा जिस किसीका भी ज्ञान कर लिया जाता, वस्तु सामने हो या न हो । तो इन युक्तियोंसे यह सिद्ध है कि विशेषका संकेत नहीं बनाया जा सकता और जब विशेषोंका संकेत नहीं बन सकता तो शब्दों द्वारा विशेष अभिधेय नहीं हो सकता, शब्दों द्वारा सामान्य ही अभिधेय हो सकेगा । निर्विकल्प प्रत्यक्षमें जैसे कि सामान्यके संकेतकी अपेक्षा न रख कर विशेषका प्रतिभास होता है उस तरह शब्दविधिमें संकेतकी अपेक्षा न रखकर प्रतिभास नहीं होता, क्योंकि शब्दविधि स्वलक्षणके सन्निधानकी अपेक्षा नहीं रखता । यदि शब्दविधि पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा रखेगा तो जो अतीत पदार्थ हैं, जो भविष्यके पदार्थ हैं फिर उनमें शब्दजन्य ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि वे पदार्थ हैं ही नहीं । इससे सिद्ध है कि शब्दविधिमें पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा नहीं होती इसी कारण शब्द द्वारा सामान्य ही अभिधेय है ।

स्वलक्षणकी अनभिधेयता और सामान्यकी अवस्तुता मानने पर शब्दोच्चारणकी अनर्थकताका प्रसंग बताते हुए शंकाका समाधान—उक्त शंकाके उत्तर में कहते हैं कि जिस प्रकार शंकाकार मान रहा है उस तरह माना जानेपर मात्र यही निकला कि स्वलक्षण तो शब्द द्वारा वाच्य है नहीं और जो शब्द द्वारा वक्तव्य है वह सामान्य है अवस्तु तो इसका निश्कर्ष यह हुआ कि शब्द द्वारा वस्तु कही ही नहीं जा सकती तब फिर शब्द का उच्चारण करना अथवा कुछ संकेत का कहना निरर्थक हो जायगा । जब शब्द द्वारा वस्तु को कहा जाता नहीं तो क्यों शब्द बोला जाय ? और क्यों संकेत किया जाय ? जो शब्द भी गाय को नहीं कहता तो अश्व शब्द भी गाय को नहीं कहता तो गो शब्दका उच्चारण क्यों किया जाता है । उस प्रसंग में अश्व शब्द भी कहने लगें क्योंकि अश्व शब्द भी गायको नहीं कहता और गौ शब्द भी गाय को नहीं कहता तो इस प्रकार वस्तुके न कहे जानेपर या तो मौन करना चाहिए या जो कुछ भी वचन बोल देना चाहिए क्योंकि अब वचनों द्वारा वस्तु तो कहा नहीं जाता तब या तो मौन रहें या जो कुछ भी बतलावें मौन रहना या कुछ भी कहना इन दोनोंमें कोई विशेषता तो रहती नहीं मौन रहें तो वस्तु नहीं कहा जाता और कुछ भी बोल दिया उससे भी वस्तु नहीं कहा जाता । तब मौनमें और जो कुछ बोल देनेमें अन्तर क्या रहा ? शङ्काकार कहता है कि मौनमें और कुछ बोल देनेमें अन्तर है । मौनमें तो कुछ भी नहीं कहा जाता और कुछ वचन बोलनेसे कुछ तो कहा ही जाता है । इसके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो शब्द अपने वाच्यभूत अर्थको कैसे न कह देगा ? शब्द यथार्थ बातको बताये संकेत द्वारा अथवा कुछ भी वचन बोलकर यथार्थ पदार्थका भाषण करे, ऐसी अगर शब्दमें मौनसे विशेषता स्वीकार करते हो तो वह विशेषता अपने वाच्य अर्थको कह देनेके अलावा और कुछ नहीं है । मौनसे अगर कुछ वचन बोलनेमें विशेषता आती है तो वह विशेषता यही है कि वचन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बोलकर उनका वाच्य अर्थ ग्रहणमें आता है।

परमार्थ एक विषयका आश्रय करके शब्द द्वारा अर्थाभिधानका नियम न माननेपर निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा भी परमार्थ एक विषयरूपसे अर्थ प्रकाशनका नियम न होनेका प्रसंग—शंकाकार कहता है कि परमार्थ एक विषय का आश्रय करके शब्द अर्थका प्रतिपादक बने ऐसा नियम नहीं हो सकता। अर्थात् शब्द परमार्थभूत एकस्वलक्षणका आश्रय करके पदार्थको नहीं कहता है इस कारणसे स्वलक्षणके अभिधानका नियम न बनेगा कि शब्द स्वलक्षणको कहे। तो परमार्थ एक विषयका आश्रय करके शब्दमें अर्थके प्रतिपादनका नियम नहीं है, किन्तु वासना विशेष के बलपर शब्द पदार्थको कहता है यह बात है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह भी कोरी बात ही है, क्योंकि यदि ऐसा माना जाय कि शब्द परमार्थ एक विषयका आश्रय करके अर्थका प्रतिपादन नहीं करता किन्तु वासना विशेषके कारणसे शब्द अर्थ का प्रतिपादन करता है तो यही बात निर्विकल्प ज्ञानमें भी लगायी जा सकती है। ऐसा कहा जा सकता है कि निर्विकल्प प्रत्यक्षको परमार्थ एक विषयका आश्रय करके जाननेका नियम नहीं है, किन्तु अपनी वासना विशेषके भेदसे वह निर्विकल्प प्रत्यक्ष पदार्थभूत एक पदार्थका आश्रय करके जाने तो भला दो चन्द्रादिकका दर्शन फिर क्यों होगा ? फिर तो चन्द्रादिकका दर्शन न होनेका प्रसंग आयगा, क्योंकि अब निर्विकल्प प्रत्यक्षसे परमार्थ एक विषयका आश्रय किया गया है। अब उसमें भ्रमकी क्या बात ? जब परमार्थभूत एक विषय जाना गया तो क्यों दो चन्द्र दिखते ? चन्द्र तो एक है और वह परमार्थ एक विषय निर्विकल्प प्रत्यक्षमें आया है तब एक चन्द्र है तो एक ही दिखना चाहिए। तो यों निर्विकल्प प्रत्यक्षके बारेमें भी कहा जा सकता है कि परमार्थ एक विषयके आश्रयसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष पदार्थ प्रतिभासक नहीं है किन्तु यह ही उपादान अर्थात् ज्ञानक्षण अपनी वासना विशेषके भेदसे परमार्थको जानता है तब इसमें बात क्या निकली कि वासना विशेषसे ही निर्धारित किया गया पदार्थ ही स्वलक्षण कहलाता है इसका कारण यह है कि जैसे विकल्पके द्वारा स्वलक्षणका अवधारण किया जाना अशक्य बताया है शंकाकारने उसी प्रकार निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा भी स्वलक्षणका अवधारण किया जाना अशक्य है।

निर्विकल्प प्रत्यक्षमें भी अर्थसन्निधानापेक्षत्व व वैशद्यका अनियम होनेसे परमार्थैकविषयत्वके अभावका प्रसङ्ग—शङ्काकार कहता है कि निर्विकल्प प्रत्यक्षमें दो बातें आती हैं—एक तो वह पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा रखता है अर्थात पदार्थ सामने है उसके कारणसे यह प्रत्यक्ष बनता है। दूसरी बात यह है कि निर्विकल्प प्रत्यक्षमें स्पष्टता है, वह स्पष्टरूपसे जानता है, इस कारण निर्विकल्प प्रत्यक्ष परमार्थभूत एक अर्थको विषय करता है। अतः वहाँ यह अनियम भी नहीं किया जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता कि विकल्पकी तरह निर्विकल्प प्रत्यक्ष भी अपनी वासना विशेषके बलपर अर्थ का प्रतिपादन करता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्षमें भी इन दोनों बातोंका नियम घटित नहीं होता अर्थात निर्विकल्प प्रत्यक्ष पदार्थका सन्निधान करे ही सो बात नहीं सिद्ध होती और निर्विकल्प प्रत्यक्षमें निर्मलता ही रहे, स्पष्ट प्रतिभास ही हो यह बात भी नियमसे नहीं बनती। देखिये ! इंद्रियज्ञान पदार्थके सन्निधानकी अवश्य अपेक्षा करे यह बात नहीं बनती, अन्यथा विभ्रम आदिक बोध न होने चाहिएं। जब प्रत्यक्षसे जाना और वह जाना पदार्थके सन्निधानके होनेसे तो जिस पदार्थके कारणसे यह ज्ञान उपजा वह ज्ञान उस पदार्थको जान लेगा, फिर विपरीत ज्ञान कैसे होगा ? संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय ये तीन प्रकारके समारोप रूप बोध भी तो हुआ करते हैं। अब यदि पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा रखता ही है निर्विकल्प प्रत्यक्ष जैसे जब मानते तब विपर्यय ज्ञान आदिक न हो सकेंगे। दूसरी भी बात देखिये ! निर्विकल्प प्रत्यक्ष विशदात्मक ही हो यह भी बात नहीं बनती अर्थात निर्विकल्प प्रत्यक्षसे स्पष्ट ज्ञान होता, यह भी नियम नहीं बनता। यदि ऐसा नियम बना दिया जाय कि निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा पदार्थका स्पष्ट बोध होता है तो दूरवर्ती पदार्थोंको जब निर्विकल्प प्रत्यक्षसे जान रहे हैं तो वहाँ भी स्पष्ट रूपसे प्रतिभास होनेका प्रसङ्ग आ जायगा। जैसे कि समीपवर्ती पदार्थको स्पष्ट जान लिया जाता है इसी प्रकार दूरवर्ती पदार्थोंको भी स्पष्ट जान लिया जाना चाहिये। क्योंकि इंद्रियज्ञानमें वह भी है और इंद्रियज्ञान दूरवर्ती पदार्थके जाननेमें भी है। ऐसा तो न होना चाहिए कि समीपवर्ती पदार्थमें जो निर्विकल्प ज्ञान होता और दूरवर्ती पदार्थमें जो निर्विकल्प इंद्रियज्ञान होता उसमें फर्क रहे अथवा निकटवर्ती पदार्थमें इन्द्रियज्ञान होता और दूरवर्ती पदार्थोंमें निर्विकल्प इन्द्रियज्ञान नहीं होता, यह बात भी नहीं कही जा सकती। क्योंकि वह जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष हो रहा है सो इंद्रियके अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध रख रहा है। चाहे दूरवर्ती पदार्थको जाने वहांपर भी इंद्रियके साथ अन्वय व्यतिरेक है और चाहे समीपवर्ती पदार्थको जाने वहांपर भी इन्द्रियके साथ अन्वय व्यतिरेक है। दोनों ही जगह इंद्रियज्ञानकी अविशेषता है, तब क्यों न समीपवर्ती पदार्थोंको जैसे स्पष्ट जान लिया जाता है उसी प्रकार दूरवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जान लिया जाना चाहिए।

निकटवर्ती व दूरवर्तीके प्रत्यक्षमें साधन अनन्तर विकल्पज्ञान आदि की अविशेषता होनेसे अन्यतरके वैशद्य व अवैशद्य प्रतिभासके पक्षपातकी अयुक्तता—शंकाकार कहता है कि बात ऐसी ही है कि दूरवर्ती पदार्थोंमें भी जो इन्द्रियज्ञान होता है वह विशदात्मक ही है। स्पष्ट प्रतिभास करता हुआ ही है, किन्तु उस इन्द्रियज्ञानमें जो कि दूरवर्ती पदार्थोंको जान रहा है वहाँ जब शीघ्र ही अनन्तर ही सविकल्प ज्ञान उत्पन्न हुआ तो उस सविकल्प ज्ञानके द्वारा उसकी विशदताके साथ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अस्पष्टताके एकत्वका आरोप हो गया अर्थात् जाना तो था दूरवर्ती पदार्थोंको भी स्पष्टरूपसे, किन्तु तुरन्त ही जो सविकल्प ज्ञान बन गया उस सविकल्प ज्ञानके द्वारा वैशद्य तो दब गया और अस्पष्टता प्रकट हो गई इस कारण दूरवर्ती पदार्थोंके सम्बंध में जो निर्विकल्प ज्ञान होता है वहाँ अविशदरूपसे प्रतीति होती है। इस शंकाके उत्तर में कहते हैं कि यदि इस तरह सविकल्प ज्ञानके द्वारा निर्विकल्प प्रत्यक्षताकी स्पष्टता का दबाव कर दिया जाय तो पास वाले पदार्थोंके सम्बंधमें भी उसका अस्पष्ट ज्ञान होनेका प्रसंग आयगा। क्योंकि वहाँपर भी अर्थात् जब समीपवर्ती पदार्थोंको जान रहे हैं निर्विकल्प प्रत्यक्षसे तो वहाँपर भी तुरन्त अनन्तर सविकल्पज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। वहाँ कहीं देर नहीं लगती। जैसे दूरवर्ती पदार्थोंको जानकर तुरन्त सविकल्पज्ञान बनता है ऐसे ही समीपवर्ती पदार्थोंको जानकर तुरन्त सविकल्प ज्ञान बनता है और ऐसा नहीं मानते तो शंकाकारके सिद्धान्तमें स्वयं विरोध आयगा। शङ्काकार मानता है कि मोही प्राणी सविकल्प ज्ञानकी शीघ्र वृत्ति होनेके कारण विशद और अविशद प्रतिभास में एकता मान लेते हैं तो सामने समीप रहने वाले पदार्थ के सम्बधमें जो इन्द्रियज्ञान हुआ उससे जो विकल्प ज्ञान बना तो वहांपर भी विशदता का तिरोभावमान लेना चाहिए। यों दूरवर्ती पदार्थोंके ज्ञानकी तरह समीपवर्ती पदार्थोंके ज्ञानमें भी अस्पष्टताका प्रसंग हो जायगा।

निकटवर्ती पदार्थके ज्ञानमें निर्विकल्प ज्ञानकी बलवत्ता व दूरवर्ती पदार्थके ज्ञानमें सविकल्पज्ञानकी बलवत्ता होनेसे विशद व अविशद प्रतिभास हो जानेकी शंका—शङ्काकारने यह कहा था कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष परमार्थभूत अर्थ को विषय करते हैं, किन्तु सविकल्पज्ञान अथवा शब्द ये परमार्थभूत एकको विषय नहीं करते और निर्विकल्प प्रत्यक्ष परमार्थभूत एक तत्त्वको विषय करते हैं। इसकी सिद्धिमें दो हेतु दिए हैं। एक तो यह कि पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा निर्विकल्प प्रत्यक्षमें रहती है अर्थात् पदार्थसे प्रत्यक्षज्ञानकी उत्पत्ति हुई है और दूसरे यह कि वह निर्मल प्रतिभास है। तो हेतुओंके सम्बन्धमें अत्पत्ति दी जा रही है कि यदि निर्विकल्प ज्ञान निराकार दर्शन निर्मल होता है तो यह बतलाइये फिर कि दूरके वृक्षको जब आंखें देखती हैं तो स्पष्ट प्रतिभास क्यों नहीं हो जाता कि यह अमुक चीजका पेड़ है? क्यों कि इन्द्रियज्ञान पास वाली चीजसे जाननेमें भी है और दूरवर्ती पदार्थके जाननेमें भी है, और इन्द्रियज्ञानको माना है स्पष्ट प्रतिभासी ज्ञान, तो क्यों नही दूरवर्ती पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है? शंकाकार कहता है कि पास वाले पदार्थमें जो निर्विकल्प ज्ञान होता है तो वहाँ निर्विकल्प ज्ञान भी होता, इसके पश्चात् सविकल्पज्ञान भी होता ऐसा तो सभी जगह होता है। पहिले होगा निराकार दर्शन जो कि प्रमाणभूत है, परमार्थका विषय करता है उसके पश्चात् होता है सविकल्पज्ञान जो कि निर्विकल्प ज्ञानसे जाने हुएका निश्चय कराता है। तो पास वाले पदार्थमें तो निर्विकल्प ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बलवान है सो निर्विकल्प ज्ञानकी विषदताके द्वारा उसके अनन्तर होने वाले सविकल्प ज्ञानकी अस्पष्टता दब जाती है। इस कारण पास वाले पदार्थके ज्ञानमें तो स्पष्ट प्रतिभास है। पर दूर रहने वाले पदार्थमें स्पष्ट प्रतिभास यों नहीं है कि वहाँ विकल्प ज्ञानकी अस्पष्टताके द्वारा निर्विकल्प ज्ञानकी स्पष्टता दब जाती है। निर्विकल्पज्ञान और सविकल्पज्ञान ये तो दोनों जगह हुए। पास वाले पदार्थको जाना वहाँ भी पहिले निर्विकल्प ग्यान हुआ, पश्चात सविकल्प ग्यान हुआ और दूरवर्ती पदार्थोंको जाना वहाँ भी पहिले निर्विकल्प ज्ञान हुआ, इसके बाद सविकल्प ज्ञान हुआ। अब अन्तर यह पड़ता है कि पास वाले पदार्थको जब जानते हैं तो वहाँ निर्विकल्प ज्ञान बलवान है सो स्पष्ट प्रतिभास होता है और दूरवर्ती पदार्थको जानते हैं तो वहां सविकल्प ज्ञन बलवान है, इससे स्पष्ट प्रतिभास होता है। सविकल्प ज्ञानका विषय है अस्पष्ट प्रतिभास और निर्विकल्प ज्ञानका विषय है स्पष्ट प्रतिभास।

उक्त विधिसे विशद अविशद प्रतिभास माननेपर गोदर्शनके समयमें अश्वविकल्पके विशद प्रतिभास होनेका प्रसङ्ग—उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यदि पास वाले पदार्थके ज्ञानमें निर्विकल्प बलवान हो जाता है और स्पष्ट प्रतिभास होता है तो सामने खड़ी हुई गायका जब दर्शन हुआ तो गायके ज्ञानमें तो निर्मलता आई और उसी समय जो अश्वका विकल्प हो रहा हो उसमें अविशदता है तो गायके दर्शनकी निर्मलताके द्वारा अश्वविकल्पकी स्पष्टता दब जाना चाहिए और फिर जब अश्व विकल्पकी अविशदता तिरोभूत हो गई और विशदता बलवान हो गयी तो अश्व विकल्पमें भी स्पष्ट प्रतिभास क्यों नहीं हो जाता? इस कारण यह नहीं कह सकते कि पास वाले पदार्थमें तो निर्विकल्प ज्ञान बलवान होता है और उसकी विषदताके द्वारा अविशद प्रतिभास तिरोभूत हो जाता है। अतः पास वाले पदार्थका स्पस्ट प्रतिभास होता है। दूर वाले पदार्थका अस्पष्ट प्रतिभास होता है यह नहीं कहा जा सकता।

गोदर्शन व अश्वविकल्पमें विषयभेद मानकर अविशदताका अतिरोभाव माननेपर नीलदर्शन व नीलविकल्पमें स्वलक्षण व अवस्तु जैसा महान विषयभेद होनेसे यहां भी अतिरोभावका प्रसंग—शंकाकार कहता हैं कि सामने रहने वाली गायके दर्शनसे अश्व विकल्पका विषय भिन्न है। इसलिए वहां क्यों यह अटपट संबन्ध जोड़ा जा रहा है कि गायके दर्शनके स्पष्ट प्रतिभास द्वारा अश्व विकल्पका अस्पष्ट प्रतिभास तिरोभूत हो जाय और अश्व विकल्पमें स्पष्ट प्रतिभास आ जाय, दोनोंका विषय न्यारा-न्यारा है। गौ दर्शनमें गाय विषय पड़ा और अश्व विकल्पमें अश्व विषय पड़ा। तो भिन्न विषय होनेके कारण वहां गायके स्पष्ट प्रतिभासके द्वारा अश्व विकल्पका अस्पष्ट प्रतिभास तिरोभूत करके फिर अश्व विकल्पका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्पष्ट प्रतिभास बनानेकी बात टीक नहीं होती। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखो यहाँ भी तो भिन्न विषय है। नील पदार्थका दर्शन हुआ, उसके बाद नील पदार्थ का विकल्प हुआ। तो विषय दो हो गए कि नहीं। एक तो नीलदर्शन और दूसरा नीलविकल्प तो भिन्न होनेसे फिर यहाँपर भी स्पष्ट प्रतिभास न होना चाहिए। जैसे भिन्न विषय गोदर्शन और अश्वविकल्पमें बताये ऐसे ही नील दर्शन और नीलविकल्प ये भी तो अलग अलग चीजें हैं। फिर यहां क्यों कहते हो कि निर्विकल्प ज्ञानकी स्पष्टता द्वारा विकल्पज्ञानकी अस्पष्टता तिरोभूत हो जाती है नीलदर्शन और नील विकल्प इनका विषय एक नहीं है, क्योंकि नीलदर्शनका विषय है स्वलक्षण और नील विकल्पका विषय है सामान्य निर्विकल्पज्ञान पहिले होता है। विकल्पज्ञान उसके बाद होता है। निर्विकल्पज्ञान स्पष्ट प्रतिभास करता है और विकल्पज्ञान अस्पष्ट प्रतिभास करता है। निर्विकल्पज्ञानमें सामान्य विषय है और सामान्य अवस्तु है तो ऐसा शंकाकारने जब माना है तो विषय न्यारे न्यारे तो अपने आप बन गए। तो इसमें भी अविशद ज्ञान हीका प्रसंग आ जायगा। शंकाकार कहता है कि नील दर्शन और नील विकल्पकी बात तो यह है कि चूंकि वह नील पदार्थके बारेमें ही तो हो रहा है तो वहां दृश्य और विकल्प इनके एकत्वका अध्यवसाय है। दृश्यका अर्थ है जो निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा समझा जाय, और विकल्पका अर्थ है जो विकल्पके एकपनेका निश्चय हो गया, इस कारण नील विकल्पमें स्पष्टताका प्रतिभास होता है। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि फिर इसी कारण तो दृष्टा और विकल्पमें एकत्वका निर्णय हो जानेसे दूरवर्ती पदार्थोंमें भी स्पष्ट प्रतिभास होनेका प्रसंग आ जाय। यह भेद क्यों है कि पास वाली चीज तो स्पष्टज्ञानमें आती है और दूरवाली चीज अस्पष्ट ज्ञानमें आती है जब दोनों जगह निर्विकल्प प्रत्यक्ष हो रहा और उसके पश्चात् विकल्प ज्ञान हो रहा तो दोनों जगह एकसा ज्ञान हो जाना चाहिए।

निकटवर्ती व दूरवर्ती पदार्थोंमें दृश्य व विकल्पके अन्तरके अध्यारोप की शङ्का—अब शङ्काकार कहता है कि पास वाले पदार्थमें जिसका कि विकल्प ज्ञानसे निश्चय किया जा रहा है उसमें तो दृश्य पदार्थका आरोप है इस कारण उस विकल्पमें विशदता आ जाती है, परन्तु दूरवर्ती पदार्थोंमें दृश्यमें विकल्पका आरोप है इस कारणसे दूरवर्ती पदार्थोंका अस्पष्ट प्रतिभास होता है। तात्पर्य यह है कि दर्शन और विकल्प दोनों ही पास वाले पदार्थमें होते और दोनों ही दूरवर्ती पदार्थमें होते। दर्शनसे पहले देखा अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्षसे पहिले जाना, पश्चात् सविकल्प ज्ञानसे उसका निश्चय किया तो निश्चय करने वाला ज्ञान तो अवस्तुको विषय करता है और जो निश्चय नहीं करता, खाली दिखता है वह वस्तुको विषय करता है, क्योंकि निश्चय करनेमें विचार उठता है, तरङ्ग उठता है, वह अवस्तु है। तो दर्शन और विकल्प दोनों ही पास वाले पदार्थोंके बारेमें होते और दोनों ही दूरवर्ती पदार्थोंके बारे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में होते । अब पास वाले पदार्थोंमें तो दृश्य बलवान है तो विकल्पपर दृश्य हावी हो गया । इस कारण वहां विकल्पमें स्पष्टता आ जाती है और दूरवर्ती पदार्थोंमें जो दृश्य हुआ है, जो जाना गया है उसपर विकल्प हावी होते हैं । इस कारण वहाँ अविशदताका प्रतिभास होता है । यह बात दृश्य और विकल्पमें सदृशताके ग्रहणसे हो जाती है याने दृश्यपर विकल्प हावी क्यों हो गया दूरवर्ती पदार्थमें और पास वाले पदार्थमें विकल्पपर दृश्य क्यों आ गया ? तो दृश्य और विकल्पमें सदृशताका ग्रहण होनेसे भ्रमवश ऐसा हो गया ।

दृश्य चन्द्रसूर्यमें दूरवर्तिताके कारण दृश्यमें विकल्पका आरोप होजाने से अवैशद्य प्रतीतिका प्रसङ्ग तथा नेत्रनिकटवर्ती करतलरेखा द विकल्पमें दृश्यका आरोप होजानेसे वंशद्य प्रतीतिका प्रसङ्ग बनाते हुए शङ्का-समाधान उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बात सारहीन है फिर तो चन्द्रसूर्य जो अत्यन्त दूर रहते हैं वहां भी दृश्यपर विकल्प हावी हो जाना चाहिए । तो चंद्र और सूर्यका भी अस्पष्ट प्रतिभास ही लगेगा लेकिन होता तो स्पष्ट प्रतिभास है । अगर दूर वाले पदार्थमें विकल्प बलवान होता है और उससे फिर अस्पष्ट प्रतिभास होता है तो चंद्र और सूर्यसे और अधिक दूर चीज ही क्या बतायें ? वह तो बहुत दूर है । तो इतनी दूर रहने वाले चन्द्र सूर्यके सम्बन्धमें विकल्प बलवान बनेगा तो उससे भी अस्पष्ट प्रतिभास होना पड़ेगा और जो आँखोंके बहुत पासमें हाथकी रेखायें हैं उन्हें आँखोंके बहुत नजदीक कर लिया तो इससे नजदीक और चीज क्या होगी ? तो इस करतल रेखामें दृश्यका आरोप हो जाना चाहिए याने निर्विकल्प प्रत्यक्ष बलवान होना चाहिए । तो वहाँ स्पष्ट प्रतिभास हुआ, पर ऐसा है कहाँ ? दूर होकर भी चंद्र सूर्यका प्रतिभास स्पष्ट है और पास होकर भी हस्तरेखाओंका प्रतिभास अस्पष्ट है, तब यह विधि न बनी कि दूरवर्ती पदार्थोंमें तो विकल्प बलवान है और पास वाले पदार्थोंमें निर्विकल्प प्रत्यक्ष बलवान है । अतः जब निर्विकल्प प्रत्यक्षकी विशदता सिद्ध नहीं होती तो यह कैसे कह सकते कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष ही परमार्थभूत एक अर्थको विषय करता है ! बात ऐसी है कि परमार्थभूत पदार्थमें निर्विकल्प प्रत्यक्षका भी विषय किया और सविकल्प जाननेका भी विषय किया ऐसा नहीं है कि अनुमान शब्द आदिक द्वारा परमार्थभूत पदार्थ न समझा जाता हो ।

अदृष्ट विशेषके कारण विशद अविशद प्रतिभास माननेकी मीमांसा शंकाकार कहता है कि दृश्य और विकल्पमें एकत्वका आरोप किया गया है । दोनों जगह दूरवर्ती पदार्थोंमें और समीपवर्ती पदार्थोंमेंसे यों दोनों ही जगह यद्यपि दृश्य और विकल्पमें एकत्वका आरोप है इस बातकी समानता है तो भी अदृष्ट विशेषके कारण किन्हीं घटनाओंमें तो विशदता है और किन्हीं घटनाओंमें अविशदता है जैसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि प्रतीतिमें आ रहा है। अर्थात् पास वाले पदार्थोंमें तो स्पष्ट प्रतिभास होता है। तो प्रतीतिके अनुसार यह बात लगा लेना चाहिए। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो उस ही अदृष्टविशेषके कारण अर्थात् जिस तरहका क्षयोपम हो कर्मका उदय मंद हो उस प्रकारसे इन दोनों ज्ञानोंमें जो कि इंद्रियजन्य है तो इंद्रियजन्यकी विशेषता न होनेपर भी किसी समीपवर्ती पदार्थमें तो विशद प्रतिभास होता है, और दूरवर्ती पदार्थोंमें अविशद प्रतिभास होता है, ऐसा प्रतीतिके अनुसार क्यों नहीं मान लिया जाता ? फिर यह एकांत क्यों किया जाता कि दर्शनमें तो विशदात्मक स्वरूपता है और पदार्थके सन्निधानकी अपेक्षा है और इस कारणसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष पदार्थका अधिगम इस प्रकार करता है कि उसका परमार्थ एक विषय होता है ऐसा नियम कैसे बने ? और, यह क्यों न बने कि जैसे शब्द विधिमें वासना संस्कारके नियमसे अर्थका अवगम होता है उस ही प्रकार निर्विकल्प प्रत्यक्षमें वासना संस्कारके ही कारण वहां अविशद ज्ञान होवे।

वचनोंको अर्थ तिपादक न मानकर अभिप्रायमात्रसूचक माननेपर विडम्बनाका दिग्दर्शन—शंकाकार कहता है कि बात यह है कि शब्दजन्य ज्ञान तो अवस्तुको विषय करता है इतनेपर भी वासनाके नियमसे वहां विशेषता नहीं आती है। किन्तु परार्थानुमान जब किया जाता है तो वह शब्द वक्ताके अभिप्रायमें आये हुए पदार्थका संकेत करता है और इस कारण वे शब्द त्रिरूपी हेतुके सूचक हैं हेतु होता है त्रैरूप्यस्वरूप अर्थात् हेतुमें पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व और विपक्षव्यावृत्ति होते हैं, तो ऐसा त्रिरूपी हेतुका सूचना करने वाला है परार्थानुमान, इस कारण वह अविसम्वादी है, वहां कोई विसम्वाद नहीं उत्पन्न होता, इस वजहसे जो यथा तथा वचन है, इन वचनोंसे परार्थानुमानमें विशेषता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि भले ही ऐसा मानलो फिर भी पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करने वाला साधन वचन अथवा अन्य ऐसे ही वचन कुछ भी सत्य नहीं हो सकते, क्योंकि अब तो वचनका प्रयोजन इतना ही है कि वक्ताके अभिप्रायकी सूचना करदें। तो वचनोंका प्रयोजन वक्ताके अभिप्रायकी सूचना करनेमें ही पूर्ण हो जाता तब वह वस्तुको क्षणिक आदिक कैसे सिद्ध कर सकेगा ? जैसे कि शंकाकारने माना है कि प्रधान और ईश्वर आदिकको सिद्ध करने वाला जो वचन है वह परमार्थभूत पदार्थको नहीं बताता किन्तु वक्ताके अभिप्राय मात्र को बताता है। जो अवस्तु है उसको जो सिद्ध करना चाहा तो अवस्तु तो सिद्ध होती नहीं किन्तु वक्ताका क्या अभिप्राय है इसकी सूचना शब्दसे मिल आती है। इसी प्रकार क्षणिकवादमें भी तो क्षणिकत्वको सिद्ध करने वाले वचन हैं वे वचन भी पदार्थ को न कहेंगे किन्तु वक्ताके अभिप्रायकी सूचना कर देंगे। वक्ताके अभिप्रायमें आई हुई बातकी सूचना दोनों जगह है। तो उसकी अविशेषता होनेपर भी यह मानना कि क्षणिकत्वकी सिद्धि तो सत्य वचन है अथवा प्रतिवादीके कथनमें दूषण देने वाला

http://sahjanandvarnishastra.org/

वचन सत्य है, किन्तु प्रधानता और ईश्वर आदिक सिद्ध करने वाला वचन सत्य नहीं है, यह व्यवस्था नहीं की जा सकती जिससे कि क्षणिकत्वको सिद्ध करने वाला वचन तो सम्वादी मान लिया जाय, प्रमाणीक मान लिया जाय और दूसरेको न माना जाय क्योंकि दोनों ही जगह अभिप्रायमें सूचना हो रही है यह बात सम्पूर्णतया पाई जाती है। जिन अनुमानके शब्दोंने सब पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करना चाहा उन शब्दोंने भी अभिप्रायकी सूचना की। जैसे कि प्रधान और ईश्वर आदिक तत्त्वोंको सिद्ध करने वाले वचनोंमें शङ्काकार मानता है कि उन वचनोंसे वक्ताके अभिप्राय भरकी सूचना होती है, तब यह व्यवस्था न बनाई जा सकेगी कि क्षणिकत्वको सिद्ध करने वाला वचन तो सत्य है और प्रधान आदिक तत्त्वोंको सिद्ध करने वाला वचन सत्य नहीं है।

वचनोंको सद्भूत अर्थका वाचक न माननेपर क्षणभङ्गादि साधन वचनकी व विपक्षदूषण वचनकी असत्यताका शङ्काकारके अनिष्ट तत्त्वकी आपत्ति—और भी सुनो ! वचन सद्भूत अर्थका प्रतिपादन नहीं करते इस कारणसे क्षणिकताको सिद्ध करने वाला वचन अथवा विपक्षीका दूषण देने वाला वचन सत्य नहीं हो सकता। जैसे कि प्रसिद्ध अनेक असत्य वचन हैं वे सत्य नहीं हो पाते। जैसे बच्चोंको भगानेके लिए कोई ऐसा कहदे कि नदीके किनारे लड्डूकी राशियाँ भरी पड़ी हैं, वहाँ जाओ ! तो ये वचन जैसे प्रकट असत्य हैं, क्योंकि इन वचनोंसे सत् अर्थका प्रतिपादन नहीं किया गया है, झूठ बात कही गई है तो वह जैसे असत्य है ऐसे ही वचनमात्र स्वलक्षणका प्रतिपादन करता नहीं, ऐसा शङ्काकारने स्वयं माना है। तब वस्तुको क्षणिक सिद्ध करने वाले वचन सत्य नहीं हो सकते। और प्रतिवादियोंका दूषण देने वाला वचन सत्य नहीं हो सकता।

वचनको सत्य व अर्थप्रतिपादक न माननेपर स्वलक्षणके निर्णयके अभावका प्रसङ्ग—शङ्काकार कहता है कि क्षणिकत्वको सिद्ध करने वाला वचन सत्य है, यह तो व्याख्याकार लोग कहते हैं। जो ग्रन्थोंकी व्याख्या करते हैं वे ही लोग ऐसा विवेचन करते हैं कि क्षणिकत्वको सिद्ध करने वाला वचन सत्य है, पर व्यवहारी लोग अथवा सभी जन तो ऐसा विवेचन नहीं करते। वे सब तो दृश्य और विकल्प्य पदार्थोंको एक करके फिर जैसा उनके मनमें आया वैसा व्यवहार करते हैं और उससे फिर क्या बात सिद्ध होती है कि क्षणिकताको सिद्ध करने वाला वचन अथवा अन्य सैद्धान्तिक वचन तो सत्य है और प्रधानता ईश्वर आदिकको सिद्ध करने वाला वाक्य सत्य नहीं है। और परमार्थसे देखा जाय तो कोई भी वचन सत्य नहीं है, क्योंकि वचन सामान्यको कहते हैं और सामान्य है अवस्तु ! उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस प्रकार मान लेनेपर भी क्या ? कि व्यवहारी जन तो दृश्य और विकल्प्यको एक करके इच्छानुसार व्यवहार करते हैं सो इसमें बात यह बनती है कि क्षणिकत्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की सिद्धि करने वाला वचन सत्य है अन्य नहीं, तो ऐसा मान लेनेपर भी यह तो सोचिये कि जो दृश्य और विकल्प अर्थाकार है याने निर्विकल्प प्रत्यक्षसे जो समझा गया वह और सविकल्पज्ञानसे जो माना गया वह, इन दोनों अर्थाकारोंमें यदि कथंचित् भी तादात्म्य नहीं है, एकत्व नहीं है तो इसके मायने यह हुआ कि स्वलक्षण सर्वथा अनवधारित रहेगा, उसका निश्चय बन ही न सकेगा। क्योंकि वचन तो स्वलक्षणको बताता नहीं और वचन जिन्हें कहते हैं उनमें स्वलक्षणका कथंचित् भी सम्बन्ध नहीं। तो अब वस्तुका निजी स्वरूप परमार्थ लक्षण तो सदैव अनिश्चित रहा। तो ऐसा अनिश्चित स्वलक्षण संशयका कैसे उल्लंघन न कर सकेगा ? उसमें तो संशय ही पड़ा है। किस प्रकार कि है या नहीं ऐसा। जिसका निश्चय नहीं है उसमें दृढ़ता क्या है। जैसे कि दान आदिक क्षण और हृदयकी भावनारूप क्षण इन दोनोंमें कथंचित एकत्व न माना जाय तो वहां यह निश्चय तो नहीं हो सकता कि यह ही उपाय है कल्याणका तो जब निश्चित न हो सका तो निःसंदेह प्रवृत्ति और निवृत्ति भी नहीं बन सकती। ऐसे ही स्वलक्षणका जब निश्चय न बन सका तो न उसका बोध हुआ और न विकल्प ज्ञानसे कुछ समझा जा सकेगा। निर्विकल्प प्रत्यक्ष से स्वलक्षणका अवधारण करना निश्चय करना असम्भव है और विकल्प अवस्तुका विषय करता है तब बतायें कि स्वलक्षणका निर्णय कैसे होगा कि वस्तुका यही खास लक्षण है ?

अंशमात्रावलम्बी विकल्पान्तर। अर्थानर्थविषयताका या वैशद्यावैशद्यविषयताका श्रद्धान किया जाना माननेपर आश्चर्यप्रकाश—और भी देखिये कि ये क्षणिकवादी निर्विकल्प और विकल्प ज्ञानका जो विषय है पदार्थ और विकल्प अथवा स्पष्ट और अस्पस्ट स्वरूप इन सब बातोंको केवल स्वकीय अंशमात्रका आलम्बन लेने वाले अन्य विकल्पसे परिज्ञान करते हैं, ऐसा मानने वाले ये क्षणिकवादी कैसे बड़े चतुर जच रहा है अर्थात् कुछ भी विकल्प नहीं है। अविकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान इसका विषय है अर्थ और अनर्थ याने निर्विकल्प प्रत्यक्षसे तो पदार्थ का प्रतिभास शंकाकारने माना है और सविकल्प ज्ञानसे सामान्यका बोध माना है तो सामान्य तो अनर्थ है, वह पदार्थ ही कुछ नहीं है। तो पदार्थको विषय करता है निर्विकल्प ज्ञान और जो पदार्थ नहीं है, अवस्तु है उसको विषय करता है सविकल्पज्ञान तो यों सविकल्प ज्ञानका विषय हुआ अनर्थ और निर्विकल्प ज्ञानका विषय हुआ अर्थ और दूसरी तरह यों समझिये कि निर्विकल्प ज्ञानका तो विषय है स्पष्ट प्रतिभास और सविकल्प ज्ञानका विषय है अस्पष्ट प्रतिभास अथवा यों कह लीजिए कि निर्विकल्प ज्ञानका तो है अभ्रान्तस्वरूप वहां भ्रम नहीं और सविकल्प ज्ञानका है, भ्रान्त स्वरूप। तो इन सब बातोंको कैसे समझा जाय जिससे कि अन्य विकल्पसे इन सकती श्रद्धा की जा सके। तब मानना ही होगा कि ये सभी ज्ञान वस्तुका विषय करने वाले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। निर्विकल्प ज्ञानमें भी वस्तुका ही विषय किया और सविकल्प ज्ञानने भी वस्तुका ही विषय किया, क्योंकि सविकल्प ज्ञानमें जिसको अनर्थका विषय करने वाला कहा जा रहा है उसमें निश्चयका, ज्ञानका प्रवेश नहीं हो सकता है। इस कारण मानना होगा कि सभी ज्ञान वस्तुको विषय करते हैं। यों सभी पदार्थ सामान्य स्वरूप हैं और विशेष स्वरूप हैं, फिर उनमें कर्मके क्षयोपशमके अनुसार स्पष्ट प्र सभास अस्पष्ट प्रतिभासका भेद सिद्ध कर लेना चाहिए।

पृथक्त्वैकान्तवादियोंके यहाँ विकल्पज्ञानके परिज्ञान व निर्णयकी भी अशक्यता—शङ्काकार यहाँ यह बताये कि विकल्पज्ञानोंका निर्णय विकल्पज्ञानसे ही होता है यह माना तो विकल्प निर्णय उसही विकल्पसे अपने आपसे होता है या दूसरे विकल्पसे निर्णय होता है। देखिये ! पहिले जाना निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा वस्तुको स्वलक्षणमात्र, पश्चात् विकल्पज्ञान द्वारा जाना उसका निर्णय, तो उस वस्तुका तो निर्णय कर दिया विकल्प जानने, पर विकल्पज्ञानका भी तो निर्णय होना चाहिए किमैं यह जान रहा हूं और यह सत्य है। जब तक ज्ञानकी खुदकी सचाई ज्ञानमें नहीं बैठती तब तक पदार्थकी जानकारीकी भी सच्चाईका निर्णय नहीं होता। जो पुरुष जान रहा है कि यह चौकी है तो उसके चित्तमें यह भी निर्णय बैठा है कि जोमैं जान रहा हूं वह ज्ञान सच्चा है, तो विकल्पज्ञानका निर्णय होना पदार्थ निर्णयके लिए आवश्यक है। तो विकल्पज्ञानोंका निर्णय क्या खुद हीसे होता, या अन्य विकल्पोंसे होता है। यदि शंकाकार यह कहे कि विकल्पज्ञानका निर्णय खुदसे ही हो जाता है अर्थात् उस ही विकल्पज्ञानसे विकल्पज्ञानका निर्णय होता है तो देखिये ! विकल्पज्ञानसे जब स्वतः ही विकल्पज्ञानका निर्णय होता है तो स्वलक्षणके सम्बन्धमें विकल्प स्वतः ही हो जाना चाहिए। यदि कहो कि विकल्पान्तरसे विकल्पज्ञानका निर्णय होता है तो उसमें अनवस्था दोष आयगा। अब उस विकल्पान्तरके विकल्पज्ञानका निर्णय होते चले जानेकी धारा बनेगी। वस्तुका निर्णय ही क्या होगा? इससे सारा जगत अर्थ विकल्प शून्य हो गया याने पदार्थका निश्चय भी न हो सकेगा। तो यों जगत अंधकी तरह हो गया। स्वलक्षणको ग्रहण करने वाले विकल्पज्ञानका ही निर्णय नहीं हो पा रहा तो सब कुछ अंधकी तरह जगत बन गया, क्योंकि जो स्वयं विकल्प अनिश्चयात्मक है उससे पदार्थ का निश्चय नहीं हो सकता। यहाँ बात यह कही जा रही है कि सर्वप्रथम निराकार दर्शन द्वारा स्वलक्षणका दर्शन हुआ, फिर उसका निर्णय करनेके लिए विकल्प ज्ञान जगा। तो वहाँ यह बतायें कि विकल्प ज्ञानका निर्णय कैसे हुआ, स्वतः या परतः ? तो स्वतः के विकल्पकी अभी आलोचना की ही गई तथा परतः निर्णयमें अनवस्था दोष आता। तो मतलब यह हुआ कि विकल्पज्ञानका निश्चय न हो सका। तो जिस ज्ञानमें, दृढ़ता नहीं, निश्चय नहीं, निर्णय नहीं, ऐसे अनिर्णयात्मक विकल्पज्ञानसे पदार्थ का निर्णय कैसे हो सकता है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनिर्णीय ज्ञानसे अर्थव्यवस्था चाहने वालोंका परोक्षबुद्धिवादियोंसे भी बढ़ते हुए कदमका अवभास—उक्त प्रकार यह क्षणिकवादी शंकाकार परोक्ष बुद्धिवादसे अतिशयवान् याने विष्टि नहीं हो सकता, अर्थात् जैसे परोक्षज्ञान मानने वालोंके यहाँ विषय होता है परोक्षरूपसे इसीप्रकार निर्विकल्पज्ञानको मानने वालोंके यहां भी पदार्थ उसी ढंगसे जाना गया जैसा कि परोक्षज्ञानसे जाना जाता है, क्योंकि अर्थ चिन्तनमें पदार्थके ग्रहणका तो उच्छेद यहाँ बराबर है। जैसे परोक्षज्ञानमें पदार्थ का क्या ग्रहण है स्वर्गको जाना परोक्ष ज्ञानने तो स्वर्गका ग्रहण कहाँ हुआ ? जैसे वहाँ चौकी वगैरहको जानते हैं तो चौकीका ग्रहण है, तो प्रत्यक्षज्ञानमें तो पदार्थका ग्रहण होता, परोक्षज्ञानमें तो ग्रहण होता नहीं और अब यहाँ इस निर्विकल्प प्रत्यक्षके प्रसंगमें भी यह स्थिति आ पड़ी कि वहाँ पदार्थका ग्रहण न हो सका जैसे कि परोक्ष ज्ञानकी अर्थ दृष्टि नहीं होती, परोक्षज्ञानमें पदार्थ ग्रहणमें नहीं आता उसी प्रकार जिसको अनिश्चय है, वहांपर भी पदार्थकी दृष्टि न हो सकेगी। स्वयं अनिर्णीत हो कोई चीज तो उस स्वयं अनिर्णीत स्वरूपके द्वारा बुद्धि पदार्थकी व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती। अगर हठ करें कि निर्विकल्पज्ञानमें अनिर्णीत है पदार्थ और विकल्पज्ञान होनेपर भी जब विकल्प ज्ञानका ही निर्णय न हो सका तो वहांपर भी अनिर्णीत है तो बताओ अनिर्णीत स्वरूपके माध्यमसे बुद्धि पदार्थकी व्यवस्था करदे तो लो यह व्यवस्था नहीं बन सकती। क्योंकि अब तो यह निर्विषय हो गया। जहां भ्रान्ति हो वहां निर्णय क्या ? स्वप्नज्ञानमें निर्णय क्या ? वहां तो भ्रान्ति ही भ्रान्ति चल रही है। पदार्थका ग्रहण कुछ नहीं है और फिर उस स्वप्नज्ञानमें तो भ्रान्ति ही है, केवल एक ओरके ही पदार्थ नहीं हैं मगर जो ज्ञान हो रहा है भीतर वह तो अपने स्वरूपमें हो रहा है। स्वप्नज्ञानमें भी दो तरफ भ्रम नहीं है। एक तरफ ही तो है कि जैसा स्वप्न ज्ञान जाना जा रहा है वैसा पदार्थ नहीं है। मगर भीतर प्रमेयकी दृष्टिसे स्वप्नज्ञानमें भी बल है जानन है, कुछ समझ रहा है लेकिन इस शंकाकारके यहाँ तो डबल भ्रम हो गया। न बाह्य पदार्थकी सिद्धि हो सकी और न अन्तः विकल्पज्ञान की सिद्धि हो सकी तो यह तो स्वप्नज्ञानके भ्रमसे भी बड़ा डबल भ्रम बन रहा है। स्वप्नादिकमें जो भ्रान्त ज्ञान बन रहा वह भ्रान्त ज्ञान तो इसी कारण है कि बाह्य पदार्थका वहाँ असत्त्व है, पर स्वरूपका तो असत्त्व नहीं है। स्वप्नमें भ्रान्त ज्ञान हो गया मगर स्वरूपसत्त्व तो है। पर यहाँ जो जगती हालतमें शंकाकारके जो विभ्रम एकांतका सम्वेदन है वहाँ न बाह्य अर्थ रहा और न अन्तरंग तो यह तो स्वप्नज्ञान या परोक्षबुद्धिवाद सभीसे बढ–बढ़कर हो गया। स्वप्नज्ञानमें स्वरूपसत्त्व है, परन्तु इस ज्ञानमें जो क्षणिकवादी शंकाकारके द्वारा अभिमत है यहां तो स्वरूपसत्त्व भी नहीं है क्योंकि ज्ञानके स्वरूपसत्त्वकी व्यवस्था विपक्षके निराकरण द्वारा जाननेमें आ नहीं सकती। जैसे विपक्ष है अभ्रांतस्वरूप तो अभ्रान्तस्वरूपका व्यवच्छेद अगर करदे तो वहां फिर जाना बन गया ? भ्रांत ही तो जाना गया। शंकाकारका यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्विकल्प प्रत्यक्ष और विकल्पज्ञान ये खुद अपना स्वरूप नहीं बना सकते तो व्यवस्था क्या करें ?

अनिश्चित एवं भ्रान्त ज्ञानसे अर्थपरिचय माननेपर सत्य और असत्यके अनर्थान्तरत्वकी अथवा पर्यायवाचिकत्वकी सिद्धिका प्रसंग-निर्विकल्प प्रत्यक्ष शंकाकारने अभ्रांत माना और कल्पनासे रहित माना। जो कल्पनासे रहित हो वही अभ्रांत होगा। जिसमें कल्पना जगती है वह ज्ञान भ्रान्त है। इसी बलपर वे निर्विकल्प प्रत्यक्षको अभ्रांत मानते। जो भी प्रतिभासमें आया, पर कल्पना तो नहीं कोई उठ रही अतएव उसे पुष्ट प्रमाण मानते हैं और विकल्पज्ञानसे चूंकि वे निश्चय करते हैं तो उसको भ्रान्त ज्ञान कहां है। लेकिन यहां तो कोईसा भी ज्ञान अपना स्वरूप नहीं रख सक रहा। जिस ज्ञानमें स्वस्वभाव और परस्वभावकी जानकारी नहीं है उसके द्वारा अपने पक्षकी सिद्धिकी व्यवस्था बनायें, देखिये—यह कितने महान आश्चर्यकी बात है। कैसे बना सकेगा वह ज्ञान व्यवस्था, जिस ज्ञानको न अपनी जानकारी है न परकी जानकारी है। शंकाकार कहता है कि स्वप साधनकी व्यवस्था और परपक्षके दूषणकी व्यवस्था कल्पनासे बनाली जाती है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। किसी भी प्रकार जब परमार्थतः जानकारी न हो कल्पनाकी भी जानकारीका सम्बन्ध नहीं बन सकता। जो यह कहते हो कि कल्पनासे व्यवस्था बन जायगी तो कल्पनाकी जिन्दगी तो परमार्थस्वरूपके आधारपर है। यदि कोई परमार्थस्वरूप है तो किसीको कल्पना कहदें। जब परमार्थस्वरूप कहीं कुछ है ही नहीं तो कल्पनाका अर्थ ही क्या होगा, क्योंकि कल्पना तो परमार्थसे विपरीत स्वरूप है। तो परमार्थ भी तो होना चाहिए। जब किसीको कल्पना भी कह दो तो परमार्थ स्वरूपकी जानकारी किसी भी प्रकारसे न होती हो जहां वहां सम्वृत्तिकी अर्थात् कल्पनाकी जानकारी न होनेपर भी कल्पनाकी जानकारी बने तो बात तो जानकारी की एक ही रही। उसीका ही नाम परमार्थ रख लो, उसीका ही नाम कल्पना रखलो। जब कोई सच बात हो तो दूसरी बातको झूठ कह सकते जहां सच है ही नहीं, केवल झूठ ही झूठ है तो उसीका नाम सच कह लो, उसीका नाम झूठ कहलो, बात एक ही रही। तो यों फिर परमार्थका ही सम्वृत्ति यह नामकरण देना निर्बाध सिद्ध हो जायगा। और, यह क्षणिकवादी शंकाकार कल्पनासे भ्रांत एकांतका साधन करे और अविभ्रम सत्य स्वरूपमें दूषण करे तो यह बात भी परमार्थसे नहीं समझ रहा है याने अपने पक्षका साधन, परपक्षका दूषण करनेकी भी बात जब कल्पनासे रही। तो जब परमार्थसे कुछ कह ही नहीं रहा तो उसके वचन तो उपेक्षा करने योग्य हैं। उस वचनमें पड़कर मिलेगा क्या ? और, देखिये आश्चर्यकी बात कि ऐसे परमार्थका निषेध करने वाले या निर्णय न रखने वाले क्षणिकवादी आजकल भी गतानुगत पीछे पड़े जा रहे हैं उनकी मान्यतामें लगे जो रहे हैंतो यह तो बहुत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बड़े अज्ञान अंधकारका कारण हैं जहां जाना शक्य नहीं है वहां जानेकी चेष्टामात्र की जा रही है।

अद्वैत और पृथक्त्वविषयक उभय एकांत मान लेनेका शंकाकारका प्रस्ताव—अब यहाँ कोई दूसरा दार्शनिक कहता है कि पृथक्त्व एकांतमें भी व्यवस्था नहीं बनी यही तो यहां बताया जा रहा है। जैसे अद्वैत एकांत माननेपर वस्तुस्वरूप की व्यवस्था नहीं बनती। इसी प्रकार पृथक्त्व एकांत माननेपर भी स्वरूप व्यवस्था नहीं बनती। सो पृथक्त्व एकांतका सही मत रहा, जैसे कि अद्वैत एकांतकी व्यवस्था न बनी और वह सही न रहा लेकिन दोनोंका एकांत तो मान लिया जाय, उभय एकांत मानने वस्तु पृथक पृथक भी है और वस्तु एक भी है। कोई वस्तु एक अद्वैत स्व है कोई वस्तु छिन्न भिन्न अनेक पृथक रूप है फिर ऐसा सिद्धांत मान लिया जाय ना ऐसी किसी मीमांसक मतानुयायी दार्शनिकोंने बात रखी मीमांसक सिद्धान्तमें कई तरहके पदार्थ हैं। कोई पदार्थ ऐसा है जो व्यापक और अद्वैतरूप है कोई पदार्थ ऐसा है कि जो छिन्न भिन्न प्रमेय करके है। उन्हें पृथक्त्व एकाँतरूपसे भी माना है, द्रव्य, गुण, कर्म आदिक जुदे जुदे खण्डित करके जो पदार्थ माना है वह पृथक एकांतका ही तो रूप है और फिर उनके भेदमें जो और जातियां मानी गई हैं वहअद्वैत एकांतका रूप है जैसे द्रव्य मान लिया। पर द्रव्य तो ९ प्रकारके हैं। तो उन ९ प्रकारोंमें द्रव्यत्व पाया जा रहा है यह अद्वैतएकान्तकी झलक है और उस एक ही सत्में स्वरूपभेद होनेसे जो न्यारा-न्यारा समझा जा रहा है वह भी पृथक्त्व एकान्त है। तो यों उभय एकान्त मान लिया जाय ? इस प्रकारकी जिज्ञासा करने वाले शंकाकारके प्रति आचार्यदेव कहते हैं। अथवा जो लोग तत्त्वको सर्वथा अवाच्य मानते हैं उनके प्रति भी आचार्य समंतभद्रदेव निम्न कारिकामें उन दोनों एकान्तोंका निराकरण करते हैं :

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।

अवाच्यतैका तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ३२ ॥

स्याद्वादनीतिसे विद्वेष करने वालेके सिद्धान्तमें अद्वैतपृथक्त्वोभयैकांत की भी सिद्धिकी अशक्यता जो लोग स्याद्वाद नीतिसे द्वेष रखते हैं उनके यहाँ उभयैकान्त भी नहीं बन सकता अर्थात् पृथक्त्व एकान्त और अद्वैत एकान्त दोनों एक वस्तुमें रहें या कोई पदार्थ पृथक्त्व एकान्तरूप हो, कोई पदार्थ अद्वैत एकान्त रूप हो इस तरहका उभय एकान्त हो, यह भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि इन दोनोंका विरुद्ध स्वभाव होनेके कारण विरोध है। जैसे कि अस्तित्व और नास्तित्व इनका परस्पर विरुद्ध स्वभाव है। तो एक विवक्षासे अथवा कहो सर्वात्मकरूपसे इन दोनोंका सद्भाव नहीं हो सकता है। एकत्व और अनेकत्व भी परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले होनेसे एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जगह इन विरोधी धर्मोंका पाया जाना नहीं बन सकता। इसी प्रकार पृथक्त्व एकांत और अद्वैत एकान्त, इनमें भी परस्पर विरुद्धताका स्वभाव है अतएव विरुद्ध स्वभाव वाले इन दोनों एकान्तोंका होना भी बन नहीं सकता। सर्वात्मक रूपसे विरुद्ध धर्मका पाया जाना नहीं बन सकता। जैसे कि धर्मीकी अपेक्षा ही पृथक्त्व एकत्व हो, धर्मीकी ही अपेक्षा अद्वैत एकान्त हो या धर्मकी अपेक्षा ये दोनों एकान्त हों या सर्वरूपसे दोनों एकान्त हों, यह बात सम्भव नहीं हो सकती क्योंकि वह तो एक दूसरेकी विधि और प्रतिषेध लक्षण वाला है अर्थात् एकको विधि होना अन्यका प्रतिषेध है। सर्वात्मकरूप से विधि और प्रतिषेध नहीं है। जैसे बंध्या और बंध्याका पुत्र। यदि बंध्या ही कह दिया तो उससे ही यह सिद्ध हो जाता है कि बंध्याका सुत नहीं होता। यदि इतना ही कह दिया कि बंध्यापुत्र, तो बंध्यापुत्र नहीं होता सो उससे ही सिद्ध होजाता है कि बंध्या है। तो जैसे बंध्या और बंध्यापुत्रमें एक दूसरेका विप्रतिषेधपना पाया जाता है उसी प्रकार पृथक्त्व स्वभावकी विधि ही तो सर्वथा अद्वैतका प्रतिषेध कहलाता है और सर्वथा अद्वैतका प्रतिषेध ही पृथक्त्व स्वभावकी विधि कहलाता है। तो अविरुद्ध धर्मोंका एक वस्तुकी अपेक्षासे पाया जाना सम्भव है। अपेक्षा दृष्टि हटा कर अर्थात् कथंचिद् वादसे हटकर सर्वथा यदि पृथक्त्व एकान्त और अद्वैत एकान्त दोनों ही माने जायें तो वह सम्भव नहीं होता। तो जो स्याद्वादकी नहीं मानना चाहते, जो स्याद्वादकी नीतिसे विपरीत चल रहे हैं उनके यहां विरुद्ध धर्म भी पाया जाना कैसे सम्भव हो सकता है? विरोधी धर्मका पाया जाना तो अपेक्षाभेदसे ही सिद्ध होता है। तो जब स्याद्वाद नीतिको नहीं चाह रहे तो उन दार्शनिकोंके यहाँ विरुद्ध धर्मका पाया जाना सम्भव नहीं है। तब यह एकान्तवादी दोनोंका एकान्त भी कैसे स्वीकार कर सकेगा? तो पृथक्त्व एकान्त और अद्वैत एकान्त इन दोनोंका विरोध होनेसे यह एकान्त भी समीचीन नहीं है।

अनभिलाप्यैकान्तकी अयुक्तता—अब जो लोग तत्त्वको सर्वथा अनभिलाप्य मानते हैं, निरंशवादी वस्तुके स्वलक्षणको शब्द द्वारा वाच्य नहीं कहते, वहाँ तो निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा उस ही रूप प्रतिभात होता है, उसका कथन नहीं होता ऐसा माना गया है, और शब्द जब कथन करते हैं तो शब्दों द्वारा कथन किया जानेमें स्वलक्षण नहीं आता। तो यों वस्तुका जो परमार्थ लक्षण है, स्वतत्त्व है वह सर्वथा अनभिलाप्य है, शब्दों द्वारा कहा नहीं जा सकता। ऐसा जो लोग मानते हैं उन्हें यह तो कहना ही चाहिए कि तत्त्व अनभिलाप्य है यह बात भी कही जा सकती है या नहीं? यदि नहीं कही जा सकती तो तत्त्वकी अनभिलाप्यता कैसे सिद्ध होगी? और यदि कहा जा सकता है कि तत्त्व अनभिलाप्य है तो अब सर्वथा अनभिलाप्य तो न बना। कहा तो गया किन्हीं भी शब्दोंसे कहो, तत्त्व वक्तव्य बन गया। तो तत्त्वको सर्वथा अवक्तव्य भी नहीं कह सकते। जैसे कि अस्तित्व और नास्तित्वसे अवाच्य है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तत्त्व यह बात घटित नहीं हो सकती, जब कह रहे हैं तो अवाच्य कहां रहा ? इसी प्रकार पृथक्त्व एकान्त और अद्वैत एकान्त इन दोनों रूपसे वस्तु सर्वथा अवाच्य है यह बात भी कैसे घटित हो सकती है ? विशेष विस्तारसे क्या प्रयोजन ? रहस्यकी बात इतनी जानना चाहिए कि प्रत्येक सत् अपने स्वरूपमें अद्वैतरूप है और वही प्रत्येक सत् भेद विवक्षामें गुण गुणी आदिक अनेकरूप है। यों सत्में कथंचित ऐक्य है और कथंचित पार्थक्य है। अब इस प्रकार एकत्वादिक एकान्तोंका निराकरण किया गया है और उस निराकरणकी सामर्थ्यसे अनेकान्ततत्त्वकी प्रसिद्धि हुई है अर्थात् वस्तु एकान्तस्वरूप नहीं किन्तु अनेकान्तरूप है। तो यों एकान्तके निराकरण करनेकी सामर्थ्यसे अनेकान्त तत्त्वकी सिद्धि हो गई, तिसपर भी उस अनेकान्त तत्त्वकी जानकारीकी दृढ़ता बनानेके लिए और किसी भी एकान्तरूप है कोई वस्तु इस शङ्काको दूर करनेके लिए अब प्रकृत पृथक्त्व और ऐक्यके सम्बन्धमें सप्तभङ्गीको बतानेकी इच्छा करते हुए आचार्यदेव अब जीवादिक पदार्थोंके दो मूल भङ्गोंको बता रहे हैं :

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तु द्वयहेतुतः।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदै: साधनं यथा ॥ ३३ ॥

अपेक्षावादमें पृथक्त्व और ऐक्य दोनोंकी स्थिति—पृथक्त्व और ऐक्य यदि ये दोनों निरपेक्ष कहे जायें तो यह अवस्तु है। पृथक्त्व भी कोई तत्त्व नहीं है, और ऐक्य भी कोई तत्त्व नहीं है और ऐसा सिद्ध होनेमें दोनोंके लिए दो कारण बताये जायेंगे। फलित अर्थ यह है कि वही वस्तु ऐक्यरूप है और वही वस्तु पृथक्त्व रूप है। जैसे कि साधन अपने भेदकी अपेक्षासे ऐक्य रूप होकर भी पृथक्त्वरूप है। निरपेक्ष पृथक्त्व और ऐक्य अवस्तु ही हैं क्योंकि ऐक्य और पृथक्त्वकी अपेक्षा रखनेसे इसके लिए अनुमान प्रयोग यों किया जा सकता है कि निरपेक्ष पृथक्त्व अवस्तु है, क्योंकि ऐक्यकी अपेक्षा नहीं रख रहा है। और, निरपेक्ष ऐक्य भी अवस्तु है, क्योंकि वहाँ पृथक्त्वकी अपेक्षा नहीं रखी जा रही है। सर्वतोमुखी परिज्ञान करके फिर निश्चय करें तो ऐक्य और पृथक्त्व यों सिद्ध किया जा सकता कि वस्तु कथंचित् ऐक्यरूप है, क्योंकि वह कथंचित् ऐक्यरूप ज्ञानका कारण है। इसी प्रकार वस्तु कथंचित् एकत्वरूप है, क्योंकि वह कथंचित् पृथक्त्व ज्ञानका कारणभूत हो रहा है। इस अनुमानका उदाहरण है जैसे हेतुस्वरूप ! किसी भी अनुमान प्रयोगमें बोले गये हेतुमें पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व व विपक्षव्यावृत्ति ये तीनोंरूप हैं। जैसे कि सब अनेकान्त स्वरूप हैं सत्त्व होनेसे या सब क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे। कोई भी साधन बोला जाय तो वह साधन सपक्षधर्मत्व सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्तिरूप भेदसे युक्त है तभी वह एक हेतु कहलाता है, यह बात वादी और प्रतिवादी दोनोंके सिद्धान्तमें सम्मत है। जो हेतु है वह एक है लेकिन उसमें पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्याबृत्ति ये तीन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार पाये जाते हैं। तो जब उन प्रकारोंपर दृष्टि देते हैं तो हेतु नानारूप सिद्ध होता है और जब एक हेतुपर ही दृष्टि देते हैं तो वह हेतु एक रूप माना गया है। यहाँ मूल बात यह सिद्ध की जा रही है कि वही वस्तु पृथक्त्वरूप है वही वस्तु ऐक्य-रूप है। और इसमें उदाहरण दिया गया है साधनका। तो उदाहरण यहाँ सही है। वहां साध्य साधन न पाये जाये ऐसा नहीं है। अन्वय और व्यतिरेक ये निरपेक्ष हों तो वे अवस्तु हो जाते हैं। फिर उसमें साधनका लक्षणपना नहीं बन सकता। तो जो अन्वयकी अपेक्षा रखते हैं उनमें ही वस्तुरूपता सिद्ध होती है क्योंकि वस्तु अन्वय व्यतिरेकात्मक है। इस कारण जो उदाहरण दिया गया है वह यहाँ समीचीन है। प्रकृत बातके साथ उदाहरणकी समता है।

अनुमान प्रयोग द्वारा निरपेक्ष पृथक्त्व और ऐक्यका निराकरण—अब यहां कोई यह जिज्ञासा करता है कि इस कारिकाके द्वारा आचार्यदेवने किया क्या है? क्योंकि जो बात यहाँ सिद्ध की जा रही है वह पहिलेकी कारिका द्वारा सिद्ध हो चुकी है। फिर इस कारिकाके द्वारा बात ही क्या नवीन कही जा रही है? इस जिज्ञासाके समाधानमें सुनो—यहां यह बात स्पष्ट की गई है कि एकांतरूपसे एकत्व और पृथक्त्व होते ही नहीं हैं, क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे बाधा आती है। यद्यपि यह अर्थ पहिलेकी कारिकाओं द्वारा ज्ञात कर लिया गया फिर भी जाने हुए उस पदार्थको भी जब अनुमान द्वारा सिद्ध कर रहे हैं उसे अनुमानका विषय बनाकर उसकी और प्रदर्शित कर रहे हैं तो उसमें स्पष्टताकी असिद्धि होती है। जिस तत्त्वको एक बार जान लिया उस ही तत्त्वका समर्थन करनेके लिए अनुमान प्रयोग किया जाता है तो उससे वह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। जो दार्शनिक प्रमाण सम्प्लववादी हैं अर्थात् एक प्रमाणमें बहुत प्रमाणोंकी प्रवृत्ति मानने वाले हैं, किसी वस्तुको एक प्रमाणसे सिद्ध कर दिया। अब उस सिद्ध की हुई वस्तुको अन्य प्रमाणसे भी सिद्ध करना यह जिनके यहां दूषण नही हैं ऐसे दार्शनिकोंके यहां गृहीत ग्रहणका दूषण नहीं माना है। जैसे कि आमतौरपर कहा जाता है कि धारावाही ज्ञान अप्रमाण है। क्योंकि वह गृहीत ग्रहण करने वाला है तो उसमें उनके ही रूप में गृहीतको ग्रहण किया जाय वह धारावाही ज्ञान कहलाता। यदि कुछ स्पष्टता करें। कुछ अन्य बात बतायें, थोड़ा भी कुछ विशेषताको जाहिर करें तो ऐसे अन्य प्रमाण देनेमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं है। तो प्रमाण सम्प्लववादी दार्शनिकों के यहां उस जाने हुए अर्थका अनुमान द्वारा पुष्ट करनेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है।

अनपेक्ष पृथक्त्व और ऐक्यको निःस्वरूप बताने वाले अनुमानका विवरण—इस सम्बन्धमें अनुमान प्रयोग इस प्रकार है कि निरपेक्ष पृथक्त्व और एकत्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता नहीं है। अथवा यों कहो कि पृथक्त्व और एकत्व परस्पर निरपेक्ष होते नहीं हैं, क्योंकि एकत्व और पृथक्त्वरहित होनेसे। कोई वस्तु एकत्वरहित भी नहीं है और पृथक्त्वरहित भी नहीं है। जो एकत्वरहित हो या पृथक्त्वरहित हो वह अवस्तु है। जैसे कि आकाशपुष्प इसका विवरण इस प्रकार है कि सर्वथा पृथक्त्व होता ही नहीं है। याने गुण गुणीमें सर्वथा अनेकता नहीं होती। जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने माना है कि द्रव्य, गुण, कर्म आदिक पृथक पृथक ही स्वतन्त्र पदार्थ हैं इसी प्रकार सर्वथा पृथक्त्व होता ही नहीं है, क्योंकि एकत्वकी अपेक्षा न रखनेसे। जहां एकत्वकी अपेक्षा नहीं है वहाँ पृथक्त्व भी सिद्ध नहीं होता। जैसे आकाशपुष्प। वहां एकत्व क्या है? निज स्वलक्षण क्या है। यदि निज स्वलक्षण नहीं है तो वहां स्वस्वामीभेद गुणगुणी भेद किसी भी प्रकारसे पार्थक्य भी न बनाया जा सकेगा। इसी तरह सर्वथा एकत्व भी नहीं है। क्योंकि पृथक्त्वकी अपेक्षा न रखनेसे आकाशपुष्पकी तरह। जैसे आकाश पुष्पमें कुछ विश्लेषण होता ही नहीं है, गुण गुणीका भेद हो, पर्याय शक्तिका भेद हो। जब ये कुछ भी भेद नहीं है तो वहां एकत्व भी नहीं हैं, अपने स्वरूपका सत्व भी नहीं है। तो इस प्रकार कहीं भी सर्वथा पृथक्त्व होता नहीं और सर्वथा एकत्व होता नहीं। इस अनुमान प्रयोगमें जो दो हेतु दिए गए हैं एकत्व निरपेक्ष होनेसे और पृथक्त्वनिरपेक्ष होनेसे। ये दोनों हेतु असिद्ध नहीं हैं, ऐसा एकांतवादीने स्वयं माना है अर्थात् वे मान ही तो रहे हैं कि एकत्व निरपेक्ष पृथक्त्व होता है। पृथक्त्वनिरपेक्ष एकत्व होता है। यद्यपि होता नहीं है ऐसा, पर उनके अभिप्रायमें तो ऐसा बैठा हुआ खण्डन जो होता है वह वस्तुका नहीं हुआ करता, किन्तु वक्ताके अभिप्रायमें वस्तुके विपरीत कोई कल्पना पड़ी हो तो उस कल्पनाका निराकरण किया जाता है। तो इन दार्शनिकोंके पृथक्त्व एकाँत और अद्वैत एकांतकी कल्पना है ही सो उसीके अनुसार यह दो हेतुका प्रयोग करना असिद्ध नहीं है। इसी प्रकार ये दोनों हेतु अनैकांतिक दोषसे दूषित नहीं हैं। इनमें स्वपक्षसत्व विपक्षव्यावृत्ति पायी जाती है। और न ही ये दोनों हेतु विरुद्ध हैं। विरुद्ध तो तब कहलाते जब विपक्षमें साध्य साधन पाये जाते, किन्तु अवस्तुभूत सर्वथा पृथक्त्वका विषयभूत कुछ है ही नहीं, तब विपक्ष में साध्य साधनमें पाये जानेकी बात ही नहीं उठती, इस कारणसे ये दोनों हेतु विरुद्ध भी नहीं है। यों असिद्ध विरुद्ध अनेकांतिक दोषसे रहित होनेके कारण दोनों हेतु समीचीन हैं और अपने इस साध्यको सिद्ध करते हैं कि सर्वथा पृथक्त्व कुछ नहीं है और सर्वथा एकत्व भी कुछ नहीं है।

सापेक्ष पृथक्त्व और ऐक्यका समाधान—सपेक्षताकी दृष्टि रखनेपर वही वस्तु ऐक्य स्वरूप और पृथक्त्व स्वरूप सिद्ध होता है, इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। वस्तु अपने स्वरूपमें ही है एक ही है। इस कारण सभी पदार्थ अद्वैतरूप हैं अपने अपने स्वरूपको लिए हुए हैं, सत्ता भी प्रत्येककी एक एक ही अखण्ड है इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणसे वस्तुमें ऐक्य है, अभेद है। और भेद दृष्टिसे निरखनेपर उसमें नाना शक्तियां नाना परिणमनोंको देखकर प्रधान पृथकत्व सिद्ध होता है। लेकिन जब ऐक्य देखा जाय तो पृथक्त्वका विरोध न किया जाय और पृथक्त्व देखा जाय तब ऐक्यका विरोध न किया जाय। यों सापेक्षताकी दृष्टिसे जीवादिक पदार्थ कथंचित् अभेद और कथंचित् भेदरूप हैं, यह बात प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट समझमें आती है, पर ऐक्य और पृथक्त्व सर्वथा सिद्ध नहीं होता। जीवादिक वस्तु कथंचित् एक हैं क्योंकि वस्तु होनेसे, अन्यथा उसमें वस्तुत्व न रह सकेगा। यदि पदार्थ एक नहीं है अपने स्वरूपमें अखण्ड नहीं है तो स्वरूप सत्त्व ही न रहा फिर वस्तुका सद्भाव क्या? तो जिस वस्तुको अभी एक समझा था वहीं वस्तु कथंचित् नानारूप भी है, अन्यथा उसमें वस्तुत्व नहीं रह सकता। यदि वह शक्तियोंका पिण्ड नहीं है, उसमें इस तरहके नाना परिणमन नहीं हैं तो वह वस्तु न रह सकेगी। अतः मानना चाहिए कि वस्तु कथंचित् अभेदरूप है और कथंचित् भेदरूप है। यह बात इस उदारहणसे भी स्पष्ट होती हैं कि साधन सपक्षसत्त्व होनेसे पुष्ट होता है अर्थात् अनुमानकी सिद्धिमें जो भी हेतु बोला गया वह सपक्षमें हो तब हेतु समीचीन है जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है धूमवान होनेसे जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि पायी जाती है जैसे रसोई घर आदिक। तो सपक्ष सत्त्वमें मिला क्या? जहाँ अग्नि हो ऐसा जो अन्य उदाहरण है वह सब सपक्ष कहलाता है। तो इस हेतुका सपक्षसत्त्व मिल तो गया मगर वह विपक्ष व्यावृत्तिकी अपेक्षा रखता है। सपक्षसत्त्व तभी ठीक है जब विपक्षमें न रहे, जैसे धूम अग्निवान जगहमें भी हो तब तो सपक्षसत्त्वका कोई मूल्य नहीं। तो जैसे साधन सपक्षमें रहे और विपक्ष में न रहे इस प्रकारसे सापेक्ष होकर ही समीचीन होता है इसी प्रकार जीवादिक वस्तु जब सिद्ध हैं तब वह कथंचित् एक हुआ और कथंचिद् गुणपर्यायवान होनेसे नानारूप भी हुआ। सपक्षमें सद्भाव होना। विपक्षमें अभावकी अपेक्षा न रखें ऐसा नहीं है अर्थात् सपक्षसत्त्व, विपक्ष व्यावृत्तिकी अपेक्षा रखते हैं इसी प्रकार साधन विपक्षमें न रहें अर्थात् विपक्ष व्यावृत्ति सपक्षसत्त्वकी अपेक्षा न रखकर न रहेगा अर्थात् विपक्ष व्यावृत्ति सपक्षसत्त्वकी अपेक्षा रखता है इस तरह हेतुका स्वरूप दूसरोंके यहाँ भी सिद्ध है तब यह उदाहरण दिया गया है। प्रकृत अनुमानमें इस उदाहरणमें साध्य और साधन दोनों पाये जाते हैं अतएव समीचीन है। प्रकृत अनुमान यह बनाया जा रहा है कि जीवादिक वस्तु कथंचित् अभेदरूप है, अन्यथा वस्तुत्व न रह सकेगा, और वही वस्तु कथंचित् भेदरूप है अन्यथा वस्तुत्व न रह सकेगा। उसके लिए उदाहरण साधन का दिया है।

पुरुषाद्वैत, चित्राद्वैत आदि उदाहरणोंसे भी वस्तुके एकानेकात्मकत्व की सिद्धि—अब जो पुरुष इस हेतुके उदाहरणको पसंद न करें ऐसे दार्शनिकोंके लिए दूसरा उदाहरण देते हैं कि जैसे ज्ञान अपने विकल्पोंके साथ रहता हैं। यहां

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभाव एकान्त मानने वाले दो प्रकारके दार्शनिक हैं, एक तो नैयायिक मीमांसक अथवा ऐक्यको मानने वाले दोनों दार्शनिक है पुरुषाद्वैत और ज्ञानाद्वैत। ज्ञानाद्वैत मानते हैं क्षणिकवादी और पुरुषाद्वैत मानते हैं वेदांती। तो उनके यहां भी जो ज्ञानाद्वैत मानते हैं तो केवल अद्वैत ही न रहेगा किन्तु नाना भेदोंको साथ लेकर ही ज्ञानाद्वैत रहेगा। जैसे इस ज्ञानाद्वैतमें चित्र विचित्र नील पीत आदिक पदार्थ प्रतिभास होते हैं उसे कहते हैं चित्रज्ञान। चित्रज्ञानमें नाना प्रकारमें आकार हैं तो चित्रज्ञानको अद्वैत मानना ठीक है। एक रहा इसमें, लेकिन ऐसा एक रहना उन नाना आकारोंको छोड़कर न बन सकेगा। तो इससे सिद्ध है कि अनेकका अविनाभावी है। अगर अनेक हों तो एक कथन रहेगा अथवा दूसरा पुरुषाद्वैतवादी है जो कहता है कि एक ही पुरुष अद्वैत है तो उनको भी ज्ञान, ज्योति, आकार, विद्या, अविद्या आदिक सभी प्रकारकी बातें माननेपर या प्रयोगमें लानेपर वे पुरुषाद्वैतकी सिद्धि कर पाते हैं तो वहां उसे अनेकोंसे सम्बन्ध रहा ही आया। अथवा और विशेष नहीं तो चित्रज्ञानमें या ज्ञानाद्वैतमें या किसी भी अद्वैत सम्वेदनमें इतना तो मानना ही होगा कि ग्राह्याकार कुछ है और ग्राहकाकार कुछ अन्य है? अर्थात् ज्ञानका किसी स्वरूप है एक और उसमें जो पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं उनके आकार भी लगा हुआ है तो इससे सिद्ध होता है कि एक अनेककी अपेक्षा रखकर ही बन सकता है। तो जब ज्ञानाद्वैत प्रतिभासाद्वैत ये सभी परस्पर सापेक्ष होकर ही भेदसे युक्त बनते हैं तो इससे यह उदाहरण निर्दोष ही सिद्ध होता है।

स्वारम्भकावयवात्मक घटादिककी व सत्त्वरजस्तमःस्वरूप प्रधानकी तरह वस्तुकी एकानेकात्मकताकी सिद्धि—प्रकृत बात यह चल रही है कि एक अनेककी अपेक्षा रखकर ही सिद्ध होता है। जैसे मीमांसकोंके यहां घट पट आदिक पदार्थ माने गए हैं अपने आरम्भक अवयवके द्वारा। उनका सिद्धान्त है कि घट किसके द्वारा रचा गया है तो घटका आरम्भ करने वाला जो अंश है, परिमाण है उन अवयवोंके द्वारा रचा गया है तो घट तो एक है। उस एक घटको सिद्ध करने के लिए अनेक अवयवोंकी अपेक्षा करना ही पड़ा है तो यहां भी यह सिद्ध होता है कि अनेकको साथ लेकर ही बन सकता है। अथवा जैसे सांख्य सिद्धांतकी प्रकृति मानी गई है, प्रकृति एक तत्त्व है किन्तु उस प्रकृतिमें धर्म है सत्त्व, रज और तम तो उन सत्त्व, रज, तम गुणोंकी अपेक्षा रखकर ही प्रधानताका स्वरूप बना है। तो प्रधान एक तो है उनके सिद्धांतके अनुसार परन्तु सत्त्वादिक अनेकोंको साथ लेकर ही वह एक है। तो इस प्रकार परस्पर सापेक्षारूप साधन अपनी अर्थक्रियाका साधन है अर्थात् ऐसा भेदात्मक माना जाय अनेकको साथ लेकर एक है इस तरह माना जाय तभी वस्तुमें अर्थक्रिया बनती है। अर्थक्रिया क्या? जैसे घटकी अर्थक्रिया है पानी का भर लाना, अथवा प्रधानरूपकी क्रिया क्या है महान अहंकार आदिक तत्त्वोंकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सृष्टि कर देना और विशेष गहरे न जायें तो इतना तो सबको ही मानना होगा कि वस्तुकी अर्थक्रिया इतनी तो होती नहीं है सबमें कि अपने विषयका ज्ञान उत्पन्न करा दे। एक प्रत्येक वस्तुकी क्रिया है तो यह सब क्रिया तभी सिद्ध होती है जब कि वस्तु को कथंचित भेदाभेदात्मक माना जाय। तो जो लोग साधनका उदाहरण न पसंद करें उनको सम्वेदनका उदाहरण तो मानना ही होगा कि जैसे ज्ञान अपने भेदके साथ ही रहता है। यहां साधन शब्दका अर्थ लेना साधन सामान्य और स्वभेद अर्थात् साधनकेभेद इस शब्दसे लेना साधन सामान्यका कथन अथवा यथायोग्य उसके विशेषरूप इस तरह एक सम्वेदनमें बहुतका संग्रह हो जाता है। इन दोनों उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि भेद अभेदकी अपेक्षा रखकर ही समीचीन है।

एकत्व और पृथक्त्वकी निर्विषयत्व होनेसे अनुपपत्तिकी शङ्का—अब यहाँ क्षणिकवादी शङ्का करता है कि एकत्वका ज्ञान हो अथवा पृथक्त्व एकान्तका ज्ञान हो तो इतने ज्ञानमात्रसे जीवादिक पदार्थोंमें एकत्व बन जाय अथवा पृथक्त्व बन जाय सो नहीं हो सकता है, क्योंकि एकत्व प्रत्यक्षसे बाधित है और पृथक्त्व सत्ता आदिक स्वरूपसे बाधित है इस कारण एकत्व भी निर्विकल्प है। एकत्वका जो ज्ञान हो रहा है उसका भी विषय कुछ नहीं है। तो निर्विषयपना होनेसे एकत्व और पृथक्त्व वस्तुमें सिद्ध न होता। एकत्वके ज्ञान करनेसे भी क्या अथवा पृथक्त्व ज्ञान कर लेनेसे भी क्या ? ऐसी शङ्का उपस्थित होनेपर आचार्यदेव समाधान देते हैं कि एकत्व ज्ञानका भी विषय है और पृथक्त्वज्ञानका भी विषय है। इसी तत्त्वको कारिकामें कह रहे हैं :

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादिभेदतः ।
भेदाभेदविवक्षायामसाधारणहेतुवत् ॥ ३४ ॥

एकत्व और पृथक्त्वके सविषयत्वका समर्थन—सत्त्व सामान्यकी दृष्टिसे सर्वमें ऐक्य है, अभेद है और द्रव्यादिकके भेदसे उन सबमें पार्थक्य है जैसे कि असाधारण हेतु समीचीन हेतुभेद विपक्षामें और अभेद विवक्षामें पृथक्त्वस्वरूप हो ऐक्य स्वरूप है। जब सर्वपदार्थोंको सत्त्व सामान्यसे देखें तो सर्व सत् प्रतीत होता है। सत्त्वकी दृष्टिसे सबमें अभेद है, पर जब वहां देखते हैं कि यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है तो इस भेदकी दृष्टिसे वहाँ पार्थक्य है तब निर्विषय कैसे रहा ? एकत्व व पृथक्त्वपना ज्ञान सत् सामान्यविशेषका आश्रय लेकर ही तो सर्व जीवादिक पदार्थों में ऐक्य माना गया है। तो ऐक्यका जो ज्ञान हुआ है उस ज्ञानका विषय है सत्त्व सामान्य। यों प्रतीतिमें आ ही रहा है कि सत्त्व सामान्यकी दृष्टिसे सर्व एक है तब एकत्वका ज्ञान निर्विषय न रहा। उस एकत्वके ज्ञानका विषय है सत् सामान्य इसी प्रकार सर्व जीवादिक विशेष जब द्रव्यादिक पदार्थभेदका आश्रय करके न निरखा जाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो वहां पृथक्त्व प्रतीत होता है। तो पृथक्त्वका ज्ञान भी निर्विषय न रहा। पृथक्त्व के ज्ञानका विषय है द्रव्यादिक भेद। तो इस तरह जब एकत्वका ज्ञान पृथक्त्वका ज्ञान विषयरहित न रहा, उनका विषय है तो सिद्ध हो गया कि वस्तु एकरूप भी है और अनेकरूप भी है।

उदाहरणमें प्रस्तुत असाधारण हेतुके ऐक्य व नानारूपत्वका विवरण

यहाँ जो उदाहरण दिया गया है असाधारण हेतुका, इस सम्बन्धमें भी इसका कुछ विवरण सुनो ! हेतु शब्द यहाँ अनुमानका अवयव रूप कहा गया है। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण आदिक जो अनुमानके अवयव बताये गए हैं उनमें बताया गया यह हेतु शब्द है यह हेतु ज्ञान भी है और कारक भी है। हेतु कारक भी होता अर्थात् कार्य को निरख करके कारणका ज्ञान किया जाता तो उसमें बोध होता है कारकपनेका। जैसे मृतपिण्डसे घड़ा बना तो घड़ेका हेतु मृतपिण्ड है तो कार्यकारण भावमें भी हेतु का प्रयोग होता है। और ज्ञाप्यज्ञापक भावमें भी हेतुका प्रयोग होता है, जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो हेतु कहा गया धूम तो यह धूम हेतु अग्निको करने वाला नहीं है, किन्तु अग्निका ज्ञान कराने वाला है। और जब कहा गया कि घड़ेका हेतु यह मृत्पिण्ड है तो वह कारक याने कराने वाला हेतु है। सो यों हेतु दो प्रकार के होते हैं ज्ञापक और कारक। तो वह हेतु असाधारणरूप है अर्थात् विशेषरूप होता है, क्योंकि अपने स्वरूपका उल्लंघन न करके प्रवादियोंमें इस विशेषणरूपसे माना है। सभी प्रवादी हेतुको मानते ही हैं तो वह हेतु जैसे अपने भेदकी जब विवक्षा करता है तो वह पृथकरूप होता हुआ विदित होता है और कारक हेतुमें जब अपने को प्रारम्भ करने वाले अवयवकी विवक्षा करता है तो वह हेतु भी घटके अवयवी रूपसे पृथक पृथक विदित होता है। किन्तु जब इस भेदकी विवक्षा नहीं की जाती, हेतुमें जब विश्लेषण नहीं किया जाता कि इसमें पक्षधर्मत्व है, सपक्षसत्त्व है, विपक्ष-व्यावृत्ति है। जब यह भेद नहीं किया जाता तो ज्ञापक हेतु तो वह एक ही है क्योंकि वहां भेदविवक्षा नहीं है इस प्रकार जब उस घट एक पदार्थको निरखा जा रहा है वहां अवयवोंकी विवक्षा नहीं की जाती है तब वह एक ही है इसी प्रकार सर्व धर्मोंके सम्बन्धमें यही बात घटा लेना चाहिए कि अपेक्षासे ही सर्व धर्मोंका वस्तुमें निवास होता है।

सर्व अर्थोंमें समान परिणाम होनेपर भी ऐक्यके अभावकी शंका—

अब यहाँ कोई क्षणिकवादी कहता है कि सब पदार्थों में समान परिणाम हैं। जैसे कि सिद्ध किया है सत्त्वकी अपेक्षा सब पदार्थ समान हैं। क्षणिकत्वकी अपेक्षा सब पदार्थ समान हैं तो सब पदार्थोंमें समान परिणामपना होनेपर वहाँ उन सब भेदोंमें, उन सब पदार्थोंमें भेद नहीं माना जा सकता है। वह एक कैसे हो जायगा ? घड़ा, कपड़ा,

http://sahjanandvarnishastra.org/

चौकी, बैंच आदिक सत्त्व समान्यसे समान हैं, सब सत हैं, इतनी समानता होनेपर भी ऐक्य नहीं हो सकता भावकी संकरता बन जायगी, लेकिन ऐसा है नहीं। प्रत्येक सत्ता अपने अपने भावसे अपने अपने स्वरूप स्वभावसे अपनेमें ही है। एक पदार्थका स्वभाव दूसरेमें नहीं मिश्रित होता है। तो समस्त परिणाम भले ही रहे आयें, वह तो विवक्षा की बात है, लेकिन परिणाम समान लेनेपर भी पदार्थमें ऐक्य अर्थात् अभेद नहीं हो सकता। भाव अथवा पदार्थ परस्पर अपनेको दूसरेसे मिला नहीं देते, क्योंकि भेदरूप से इनकी प्रतीति हो ही रही है। और फिर उन सब पदार्थोंमें असत् कार्यकारण-व्यावृत्ति है अर्थात् यह उसका कार्य नहीं, यह उसका मेरा कारण नहीं। अब इस तरहकी व्यवस्था है तो भले ही समान व्यवहार उनमें हो जाय फिर भी परमार्थसे तो उनके स्वभावमें संकीर्णता नहीं है। अर्थात् वह एकमेक नहीं हो जाता। अतः समान परिणाम होनेपर भी उनमें भेद नहीं माना जा सकता है।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे समान व्यवहार होनेपर परमार्थतः सर्व पदार्थोंमें पार्थक्यकी ही सिद्धकी शंका—शंकाकारने कहा है कि जितने भी पदार्थ हैं वे अपने ही स्वरूपमें, अपने ही स्वभावमें व्यवस्थित हैं इस कारणसे सभी पदार्थ अपनी जाति वाले पदार्थोंसे पृथक हैं और विजातीय पदार्थोंसे पृथक हैं तो जिस कारणसे उनमें अन्यापोह है तो उनकी जो चेतना बनी, सत्त्व जाति या जो भी जाति बनी वह पदार्थोंकी व्यावृत्तिके कारण बनी। पदार्थमें स्वयं जाति नहीं पड़ी हुई है और वे जातिके भेद उन विशेषोंमें रहने वाले हैं तो जातिभेदकी कल्पना हुई है वह अन्यापोहके कारण हुई है उसमें अन्यापोहकी व्यावृत्ति है पर वस्तुमें स्वलक्षणकी समानता करके जाति वास्तविक नहीं होती। जो बात जिस धर्मके द्वारा प्रतीत हो वह उस दृष्टिसे ही प्रतीत होगी अन्य प्रकारसे उसका प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। तो समस्त पदार्थोंमें जो सत्त्व सामान्य है सो वह वास्तविक नहीं है। किन्तु असद्व्यावृत्ति, अन्यापोहके कारण यह जातिभेदकी कल्पना की गई है। इससे सिद्ध होता है कि सभी पदार्थ परस्पर एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न हैं। उनमें ऐक्य नहीं है।

जीवादिक पदार्थोंमें सत्सामान्यरूपसे ऐक्यकी सिद्धि करते हुए उक्त शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं—जीवादिक पदार्थोंमें ऐक्य है, सत्सामान्यस्वभावसे भेद न होनेसे। जैसे कि एक पदार्थमें स्वभावभेदका अभाव है, उसी प्रकार अनेक पदार्थोंमें भी किसी अपेक्षासे स्वभावभेदका अभाव है। याने यह पदार्थ एक ही है, यह परमाणु एक ही है, यह बात कैसे जानी जाती है ? यों कि उस परमाणुमें स्वभाव नाना नहीं हैं, एक है। तो जैसे एक वस्तुमें ऐक्यकी सिद्धि स्वभावभेद न होनेसे की जाती है इसी प्रकार समस्त पदार्थोंमें ऐक्यकी सिद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी स्वभाव भेद न पाया जानेसे हो सकती है। जैसे जितने भी जीव हैं सब जीवोंमें चैतन्य स्वभावका भेद नहीं है, इस दृष्टिसे उन सबमें एकता है। तो जैसे एक पदार्थमें एकताका कारण स्वभावभेदका अभाव है उसी प्रकार अनेक पदार्थोंमें भी जिस अपेक्षासे स्वभावभेद न पाया जाय तो वहाँ उस अपेक्षासे ऐक्य मानना होगा अर्थात् सबमें स्वभाव समान है। इस दृष्टिसे सबमें अभेद है तभी तो एक सत कहा तो सतके कहनेसे सभी पदार्थोंका ग्रहण हो जाता है, क्योंकि सत्त्व स्वभावकी दृष्टिसे सब पदार्थोंमें एकता है, अभेद है। स्वभावभेदका अभाव हुए बिना शङ्काकारके सिद्धान्तमें भी चित्रज्ञानमें प्रतिभासित नीलस्वलक्षण कुछ भी जो उन्हें इष्ट है वे कुछ नहीं हैं। तथा स्वभावसे एकत्व होनेपर भी सांकर्य नहीं हैं। एकत्वका निराकरण अन्य कुछ नहीं है। जैसे माना कि यह नीलक्षण है, यह रूपक्षण है, यह गंधक्षण है, यह स्पर्श क्षण है तो ये सब न्यारे-न्यारे इस कारण किए हैं कि नीलक्षणका स्वभाव नीलमें ही है अन्यमें नहीं है, ऐसा माननेपर भी एक आधारमें है, यही तो नीलक्षणकी एकताका कारण है अथवा जो ज्ञानाद्वैत मानते हैं कि ज्ञान एक है तो क्यों एक है ? उस ज्ञानमें जो स्वभाव है वह है, स्वभावका विच्छेद नहीं है। इस कारणसे वह एक है तो किसी भी घटनामें किसी भी व्यक्तिकी एकताका कारण यह माना जायगा कि स्वभावका विच्छेद नहीं है वही स्वभाव है एक तो इसी प्रकार अनेक पदार्थोंके प्रसङ्ग में भी यदि एक स्वभावकी बात समझमें आई तो वहाँ एकत्व क्यों न मान लिया जायगा ? यों एकत्व वास्तविक है, काल्पनिक नहीं है। जो कथंचित् भिन्न हैं ऐसे भावोंमें सामान्य स्वभावका विच्छेद नहीं है, इस कारणसे वहाँ भी ऐक्य माना जायगा। जैसे द्रव्य, गुण कर्म आदिक पदार्थ हैं या विश्वके ये सब चेतन अचेतन पदार्थ हैं, इन सबमें सत्त्व सामान्यकी दृष्टिसे विच्छेद नहीं है कि इसमें सत्त्व है इसमें नहीं। सभीमें सत्त्व है तो जब सत् सामान्य स्वभावका विच्छेद नहीं है जो कि अनुभवमें भी आ रहा है तो सिद्ध है कि इन सबमें एकता है जातिकी दृष्टिसे ये सब एक हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो यह हो जायगा कि कोई तो सत है और कोई असत् है। यदि सब पदार्थोंमें सत्त्व सामान्यको न माना जाय तो यह सिद्ध हो बैठेगा कि कोई सत् है कोई असत्। इस कारणसे यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि जब पदार्थोंमें स्वभाव विच्छेदका अभाव है तो सब पदार्थ एक हैं सत्त्वकी अविशेषता होनेसे।

स्वभावसे एक माननेपर भी सांकर्य होनेके भयका अभाव अब यहाँ दूसरी बात सुनो जिसका कि डर लग रहा है शङ्काकार को ! शङ्काकारको यह भय है कि समानता मान लेनेसे कहीं संकरता न आ जाय, सो भय न करें, सदात्मक रूपसे सब पदार्थोंका परस्परमें एकत्व हो गया क्योंकि सभी सत् हैं तो सत्त्व दृष्टिसे सब पदार्थोंमें एकत्व हो जानेपर भी संकरता न आयगी। पदार्थोंका अपना-अपना स्वरूप निराला-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निराला रहेगा अर्थात् आवान्तर सत्त्व बराबर सबका पृथक -पृथक रहेगा । इसमें शंकरता न आयगी और सदात्मकता रूपसे सब पदार्थोंमें परस्पर मिश्रण हुआ है अर्थात् सभी सत् हैं, तो सत्सामान्यकी दृष्टिसे सभी पदार्थ सत् हो गए तिसपर भी सब पदार्थोंका स्वभाव निराला है, असाधारण धर्म आवान्तर सत्त्व सबका जुदा है. वहाँ संकरता न आयगी। जैसा कि शङ्काकारने स्वयं कहा है कि एक चित्रज्ञानमें नील पीत सुख दुख आदिक अनेक तत्त्वोंका प्रतिभास हो रहा है। तो एक ज्ञानमें जितनी भी चीजें प्रतिभासमें आ रही हैं तो प्रतिभास सामान्यकी दृष्टिसे तो सबमें एकता है। नीलक्षण ज्ञानमें आया तो नीलक्षणका प्रतिभास, गंधक्षणका प्रतिभास, सुखका प्रतिभास ये सब ज्ञानकी दृष्टिसे तो एक हैं. क्योंकि सबका ज्ञानरूप बन रहा है फिर भी नीलप्रतिभास, सुखप्रतिभास, इनमें स्वरूपभेद तो है ही, तो एक होनेपर भी सांकर्य नहीं हो पाता, यह बात शङ्काकारके सिद्धान्तमें भी मानी गई है। तो इसी तरह विश्वके समस्त पदार्थ सत्त्वकी दृष्टिसे अभेदरूप हैं, एक हैं, मिश्रित हैं तिस पर भी सबमें अपना- अपना परिणमन है, अपनी अर्थक्रिया है, अपना ही आवान्तर सत्त्व है, इस कारण उन सब पदार्थोंमें सांकर्य न होगा। जैसे कि एक चित्रज्ञानमें अनेक प्रतिभास होनेपर भी वहाँ अनेकता है कि यह नील प्रतिभास है, यह सुखादिक प्रतिभास है आदिक वहाँ भेद है ही। यदि कोई शङ्काकार यह कहे कि वहाँ तो सर्वथा भेद है सुखप्रतिभास नीलप्रतिभास ये सब न्यारे-न्यारे हैं, वहाँ यह बात कैसे घटित कर रहे कि एक होनेपर भी न्यारे-न्यारे हैं। एक तो हैं ही नहीं। वे तो द्रव्यसे अन्त तक भिन्न ही हैं। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि ज्ञानमें आये हुए विविध जो ज्ञेयाकार हैं उन सबको यदि सर्वथा अनेक मान लोगे तो एक चित्रज्ञानकी सिद्धि नहीं हो सकती अर्थात् वह एक ज्ञान न रहा एक ज्ञान तो तब रहता कि जितने प्रतिभास हो रहे हैं उन सब प्रतिभासोंको ज्ञानदृष्टिसे एक मान लो। तब तो वह एक ज्ञान कहलाता। अब मान लिया वे सब ज्ञेय बिल्कुल भिन्न भिन्न जैसे कि एक ज्ञानपरिणमनमें बहुत पदार्थ प्रतिभासमें आये तो वहाँ चित्र विचित्र नाना चीजें प्रतिभासमें आ रही हैं, पर वह ज्ञानपरिणमन एक है कि अनेक हैं ? वह तो एक है और उसमें जो विषय झलके हैं, वे एक होनेपर भी अनेक होते हैं, यही तो मेल दिखता है जैसा कि शंकाकारके सिद्धान्तमें भी माना गया है कि एक चित्रज्ञान होनेपर भी वहाँ नाना प्रतिभास है और वे भिन्न भिन्न हैं। अब यदि उन सब प्रतिभासोंको बिल्कुल ही न्यारा न्यारा मान लोगे तो एक चित्रज्ञान न बन सकेगा, फिर चित्रज्ञानाद्वैतका सिद्धान्त मिट जायगा। तो जैसे सर्वथा अनेक माननेपर चित्र ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती यदि वह ज्ञान सर्व प्रकारसे एक है तो फिर चित्र ज्ञान क्यों कहते ? तो एक अनेक के साथ जुड़ा है अनेक एकके साथ जुड़ा है। यदि सर्वथा अनेक मान लोगे तो चित्र ज्ञानकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे कि सर्वथा एक मान लेनेपर चित्रज्ञानकी सिद्धि नहीं होती।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निरंशसंवेदनाद्वैतवादमें एकसंवेदनत्व होनेपर भी वेद्यवेदकाकारमें सांकर्य का अभाव— अब यहां शंकाकार कहता है कि लो तभी तो भिन्न ज्ञान कुछ भी नहीं है। सब कुछ निरंश सम्वेदन है जिसका कि अंश नहीं किया जा सकता। भेद विभाग नहीं किया जा सकता, ऐसा मात्र एक ज्ञान सम्वेदन ही है। अब यह बात कह रहे हैं ज्ञानाद्वैतवादी। दो प्रकारके ये दार्शनिक हैं चित्रज्ञान वाले और मात्र ज्ञानाद्वैतवादी तो अभी जो बात कहते थे वह चित्रज्ञान द्वैत मानने वालेने कहा था कि देखो वहां एक अनेकके साथ जुड़ा है। एक अनेकके साथ जुड़ा हुआ है। तो इसपर केवल ज्ञानाद्वैत मानने वाला कहता है कि तब हमारा सिद्धान्त ठीक रहेगा। इस चित्रज्ञान वालेका ज्ञान ठीक न रहेगा। हम तो केवल एक ज्ञान मानते हैं हम विविध प्रतिभास या चित्रज्ञान नहीं मानते तभी तो हमने कहा था कि भिन्न ज्ञान कुछ नहीं है। केवल एक सम्वेदन अद्वैत है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि देखो यहांपर भी अनेकके साथ जुड़ाव मानना ही पडेगा। नहीं है वहां चित्र प्रतिभास या जो भी प्रतिभास है उसे चित्र नहीं मान रहे हो तो मत मानो। लेकिन ज्ञानाकार और ज्ञेयाकारको तो न मेट सकोगे। एक ज्ञानाद्वैत मानो। अब यह बताओ कि एक ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार दो तत्त्व हैं कि नहीं? यदि कहोगे कि नहीं है तो फिर ज्ञान ही क्या रहा? ज्ञेय नहीं है कुछ। जहां कुछ जानना नहीं हो रहा उसे ज्ञान कैसे कहा जायगा? तो ज्ञेयाकार माने बिना ज्ञानस्वरूपकी सिद्ध न हो सकेगी। तो मानना होगा कि उस एक ज्ञानाद्वैतमें दो मुद्रायें हैं—ज्ञेयाकार और ज्ञानाकार। ग्राह्याकार और ग्राहकाकार। कोई चीज ग्रहणमें लायी जा सके ऐसी शक्ति हैं इसमें और इसके पदार्थको ग्रहण करले ऐसी शक्ति है ज्ञानमें। तो ज्ञेयाकार और ज्ञानाकार इनको तो मानना ही पडेगा। जो प्रधान अनुभवसे सिद्ध है ज्ञेयाकारका तो होता है परोक्षरूपसे ज्ञान और ज्ञानाकारको होता है प्रत्यक्षरूपसे ज्ञान। तो जहां इतना बड़ा भेद भी समझमें आ रहा है कि जो परोक्षपद्धतिसे तो ज्ञेयाकार जाना जाता है। प्रत्यक्षपद्धतिसे ज्ञानाकार जाना जाता है तो अब वहांपर दो भेद आ गए कि नहीं आ गए? तो एक सम्वेदन होनेपर भी दो आकार आये, उन दो आकारोंका सांकर्य नहीं माना है अर्थात् ज्ञेयाकार और ज्ञानाकारके दोनों एक बन जायें ऐसा नहीं माना गया है। इससे सिद्ध है कि एक अनेकके साथ जड़ा हुआ है अन्यथा यदि एक अनेकके साथ जुड़ा हुआ न हो तो ज्ञानाकार परोक्ष बन जाय। जैसे कि ज्ञेयाकार परोक्ष रहता है अथवा ज्ञेयाकार प्रत्यक्ष बन जाय जैसे कि ज्ञानाकार प्रत्यक्ष होता है तो ज्ञेयाकार तो परोक्ष विधिमें है और ज्ञानाकार प्रत्यक्ष विधिमें है तो ये दो तत्त्व कैसे न माने जायेंगे? जिनमें इतनी बड़ी भेद पद्धति पायी जा रही हो वहांपर भी आप एक ही लक्ष्य लायें कि सर्वथा ज्ञानाद्वैत है तो यह बात कैसे सिद्ध होगी? मानना ही होगा कि वहां ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार ये दोनों तत्त्व हैं।

वस्तुको एकानेकात्मक माने बिना दर्शनकी गतिका अभाव—यहांपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो ज्ञेयाकार और वेदकाकार दोका परिज्ञान होता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि दोकी प्रतिपत्तिका विरोध है और दोकी जानकारीका विरोध होनेसे समारोप याने गुण और कर्मका जो एक समारोप है उससे भी इसकी अविशेषता है तो गुण और कर्मका भी परिज्ञान न हो सकेगा विरोध होसेसे। यह बात नहीं कही जा सकती है। क्योंकि वेद्याकार और वेदकाकारके ज्ञानमें समारोपकी असम्भवता है। ये दोनों एक न बन जायेंगे। दोनोंका भेद होनेपर किसी ही ज्ञानाकारमें फिर निश्चय न बन सकेगा। अब यह बात मानना चाहिए कि उस ही सत्का द्रव्यादिक भेदसे पृथक्त्व है इसके लिए उदाहरण चित्रज्ञानका लगा लेना चाहिए। याने समस्त पदार्थ वे सत् हैं तो सत् सामान्यकी दृष्टिसे सर्व पदार्थ एक हैं और द्रव्य गुण कर्म आदिकके भेदसे वे सब पृथक पृथक हैं। यह जो उदाहरण दिया जा रहा है उस शंकाकारके सिद्धांतसे, शंकाकारको समाधान मिल जाय इस तरह दिया जा रहा है। वहां द्रव्य गुण कर्म कोई अलग अलग पदार्थ नहीं है। वे एक ही सत् हैं और एक ही सत्की ये विशेषतायें हैं, पर इन्हें जैसा शंकाकारने माना है उस तरहसे उत्तर दिया जा रहा है। और ऐसा होनेपर अर्थात् जब सर्व पदार्थ एक स्वरूप हैं और अनेकस्वरूप हैं यह सिद्ध हो गया तो पदार्थोंका स्वभाव ही यह कहलाया कि वह एकत्वमें रहे और अनेकत्वमें रहे। स्वभावसे और परभावसे उनकी इस ही प्रकार व्यवस्था है स्वभावसे तो वे पदार्थ अनुवृत्त रूप हैं और व्यावृत्तरूप हैं याने पदार्थ अपनी चेतनामें समानता धर्म रखता है यह तो अनुवृत्तिका रूप है और एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे पृथक रहता है व्यावृत्त रहता है यह व्यावृत्तिका रूप है। एकांतसे यह नहीं कह सकते कि पदार्थ व्यावृत्तिके पात्र हैं अर्थात् उनमें अन्यापोह ही मात्र है। पररूपसे असत् है तो स्वरूप से सत् भी है केवल अन्यापोह ही न मानना चाहिए। तब यह बात सिद्ध होती है कि जिस–जिस पदार्थसे पदार्थोंकी व्यावृत्ति है उस व्यावृत्तिके ही कारण भेद विशेष निश्चित किया जाता है। जीवसे पुद्गल निराला है ऐसा भेद समझनेका हेतु यही तो है कि जीवसे पुद्गल हटा हुआ है मिला नहीं है तो जिन जिन व्यावृत्तियोंसे भेद विशेष समझमें आता है वे व्यावृत्तियां भी ठीक हैं और वह भेद भी ठीक है, पर उन धर्मोंसे जातिविशेष समझमें न आयगा याने परसे व्यावृत्ति है इस कारणसे जाति समझमें न आयगी, सामान्य समझमें न आयगा, विशेष समझमें आयगा कि यह उससे निराला है। तो निरालापन समझमें आयगा पर व्यावृत्ति समझमें न आयगी, क्योंकि इसमें प्रतीतिसे विरोध हो रहा है।

अनुवृत्तव्यावृत्तात्मक पदार्थमें अनुवृत्तिसे जातिकी सामान्यकी प्रतीति एवं व्यावृत्तिसे विशेषकी प्रतीति—व्यावृत्तिसे विशेषोंकी ही प्रतीति हुआ करती है जातियोंकी नहीं। जातियोंकी प्रतीति तो अनुवृत्तिसे होगी। जैसे चेतन, अब चेतन जहाँ जहाँ हैं वे सब जीव जुदे हैं तो अनुवृत्तिसे तो जातिकी प्रतीति होती है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यावृत्तिसे भेदकी प्रतीति होती है। तो जिस जिस पदार्थमें धर्मकी अनुवृत्ति होती है उस उस हेतुसे जातियाँ समझी जाती हैं। जैसे सत्त्व जीव पुद्गल सभी पदार्थोंमें है तो उससे सत्त्व जाति मानी गई है, चैतन्य सब जीवोंमें है, तो सब जीवोंकी जाति चैतन्य समझी गई तो अनुवृत्तिके कारण जाति समझमें आती है क्योंकि जाति अनुवृत्तिके ज्ञानसे ही प्रतीतिमें आता है। जो बात सबमें पायी जाय तो बस वही एक जाति है, तो जातिका परिज्ञान तो अनुवृत्तिसे होता और भेदका परिज्ञान व्यावृत्तिसे होता लेकिन क्षणिकवादी यह मानते हैं कि व्यावृत्तिसे तो जातिकी कल्पना की जाती है और अनुवृत्ति वहां मानी नहीं गई है। स्वलक्षण भिन्न भिन्न पदार्थ समझे गए, हैं लेकिन व्यावृत्तिसे जातिका ज्ञान नहीं हो सकता। होता है व्यावृत्तिका अर्थ तो उससे भेद ही तो जाना जायगा। जाति नहीं जानी जाती। तब जिस धर्मसे सामान्यका ज्ञान होवे उस ही धर्मसे तो भेद और सामान्य बताया जा सकता है। उससे भिन्न धर्म से नहीं है। जैसे यावृत्तिसे भेद जाना जाता है तो व्यावृत्तियोंसे सत् सामान्य नहीं कहा जा सकता। जैसे कि क्षणिकवादी अन्यापोह द्वारा सत सामान्यको वाच्य बताते हैं और इसी कारण सत् सामान्य अवस्तु बताते हैं। तो जो बात जिस धर्मकी अपेक्षा से है उसका प्रतिपादन उसी धर्म द्वारा हो सकता है। उससे भिन्न अन्य धर्म द्वारा उसका प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। तब इससे यह सिद्ध हुआ कि पदार्थकी व्यवस्था भिन्न रूपसे भी है, अभिन्नरूपसे भी है ऐसी ही प्रतीति हो रही है, इसमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है। इस कारण यह सिद्ध हुआ कि सत्सामान्यकी अपेक्षा सर्व पदार्थोंमें अभेद है और द्रव्यादिक भेदकी विवक्षामें उनमें पृथक्त्व है पृथक्त्वका एकांत अथवा ऐक्यका एकान्त मानना युक्तिसंगत नहीं है। अब जहां सत् सामान्य की विवक्षाकी वहां ऐक्यका बोध हुआ मगर पृथक्त्व गौणरूपसे समझना चाहिए। और जब द्रव्यादिक भेदकी विवक्षाकी तब पृथक्त्वका बोध हुआ किन्तु वहां ऐक्य गौणरूपसे समझना चाहिए। अब शंकाकार कहता है कि विवक्षा और अविवक्षा जिसके माध्यमसे तत्त्व सिद्ध कर रहे हो यह कोई चीज ही नहीं है यह असत् विषय है। कोई सद्भूत पदार्थ तो नहीं है। इस कारणसे विवक्षा और अविवक्षाके माध्यम से तत्त्वकी व्यवस्था करना युक्त नहीं है। कोई चीज ही हो विवक्षा अविवक्षा, तब तो उसके द्वारा यह सिद्ध करें कुछ। जब विवक्षा अविवक्षा वस्तु ही नहीं तब विवक्षा और अविवक्षासे तत्त्व व्यवस्था न बनायी जायगी। जोपदार्थमें हो सो कहो, जो न हो सो मत कहो पर विवक्षा और अविवक्षा की क्या बात है ऐसी जिज्ञासा रखने वाले जिज्ञासुको समाधान करते हैं—

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि।
सतो विशेषणस्यात्रनासतस्तैस्तदर्थिभिः॥ ३५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनन्तधर्मात्मक धर्मीमें विवक्षा व अविवक्षा की सम्भवता—अनन्त धर्मात्मक विशेष्यमें अर्थात् पदार्थमें जो विवक्षा और अविवक्षाकी जाती है सो सद्भूत विशेषणकी की जाती है असत्भूतकी नहीं। जो पदार्थमें सद्रूप हो विशेषण उसके ही विवक्षा व अविवक्षा बनती, मगर जो सर्वथा असत् है उसकी न कोई विवक्षा कर सकता न अविवक्षा कर सकता। चाहे कितने ही तत्त्वोंको कोई चाहने वाला हो। पृथक्त्वकी इच्छा करता हुआ या अद्वैत एकांतको चाहता हुआ कोई भी पुरुष असत् की विवक्षा और अविवक्षा नहीं कर सकता। जो सत् विशेषण है उसका ही कर सकेगा। विशेषणका अर्थ है धर्म। जो धर्म है उसकी विवक्षा करले अथवा अविवक्षा करले। पदार्थ अनन्त धर्मात्मक है, यह बात पहिले भली प्रकार बता दी गई है। यों नास्तित्व अस्तित्वके साथ अविनाभावी है, अस्तित्व नास्तित्वके साथ अविनाभावी है, आदिक रूपसे अनन्त धर्मादिक पदार्थोंको पहिले सिद्ध कर दिया है। अब उस अनन्त धर्मात्मत्मक पदार्थमें कोई विशेषण हो एकत्व तो वह सत् ही है, उसकी विवक्षा कही गई है अथवा पृथक्त्व माने तो वह भी सत् ही है जिसकी कि विवक्षा की जाय और अविवक्षा की जाय याने कहनेकी इच्छा उसीके होगी जो सत् है, और कहनेकी इच्छा न हो यह भी बात उस ही होगी जो कि सत् हो। देखिये ! आकाश पुष्प, गधेका सींग इनकी कहाँ विवक्षा और अविवक्षा है। तो असत् पदार्थकी विवक्षा और अविवक्षा नहीं बनती। चाहे कोई एकत्वको चाहता हो अथवा पृथक्त्वको चाहता हो, जो कुछ भी सिद्ध किया जा सकेगा वह सत्में ही किया जा सकेगा, असत्में सिद्ध न किया जा सकेगा।

असत्में ही विवक्षा व अविवक्षा की अनुपपत्ति—जो सत् पदार्थ है, उसके सम्बन्धमें कोई कुछ चाहे और न चाहे, दोनों बातें सम्भव नहीं हैं। जैसे आकाशफूल-माला वह असत् है, तो न उसे कोई पहिनना चाहेगा, न फेंकना चाहेगा। किसे पहिनेगा ? किसे फेंकेगा ? जो असत् पदार्थ है उसकी न विवक्षा है, न अविवक्षा। किसी असत् पदार्थमें क्रियायें ही नहीं हैं अर्थात् अर्थक्रिया कारणशक्तिसे शून्य है। जैसे—आकाश पुष्प, उससे क्या काम होगा ? उसका न तो ज्ञान हो पाता न उसका प्रतिभास हो पाता, न उसका हटाना हो पाता। कुछ भी तो अर्थक्रिया नहीं बनती। किसी भी प्रकारका उसमें काम नहीं है। जैसे खरविषाणसे क्या काम निकलता है ? है ही नहीं, तो काम क्या करेगा ?

मनोराज्यादिक किसी विवक्षाविषयका असत्त्व देखा जानेपर सभी विवक्षा विषयोंकी असत्त्वके कथनकी अयुक्तता—अब यहां शंकाकार कहता है कि विवक्षाका विषय तो मनसे सोचा हुआ राजा भी बन जाता है। कोई सोचले कि हम राजा हैं, हमारा यह राज्य है, राज्यका व्यापार करे तो लो विवक्षाका विषय तो वह बन गया। तो विवक्षाका विषयभूत तो मनोराज्यादिक भी होते हैं लेकिन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं वे असत्। कहां रखा है राज्य ? और मनमें कुछ सोचलो। कुछ भी कहनेकी इच्छा रखलो तो विवक्षाका विषयभूत होकर भी असत् होता है पदार्थ। फिर यहाँ क्यों कहते हो कि विवक्षाकी वजहसे भेद और अभेदकी व्यवस्था हो जायगी। विवक्षाका विषय सत् भी हो सकता असत् भी हो सकता। तो यह कैसे कहना युक्त है कि विवक्षा सत्में ही होती है असत्में नहीं होती। इसके समाधानमें कहते हैं कि यदि कोई बात ऐसी मिल गई कि विवक्षाका विषय भी हो गया और असत् भी हो गया, तो इसके मायने यह न ले सकेंगे कि विवक्षाके विषयभूत जितने भी हैं सबमें असत्व है। एक मनका राज्य अगर असत् धर्म आया जो सोचा जा रहा है तो इसके मायने यह नहीं कि जो कुछ भी सोचा जाय, जिसको भी बोला जाय वह सब असत् ही हो यह बात नहीं मान सकते। जैसे कि प्रत्यक्षका विषयभूत भी कोई कोई असत् निकल आता है। प्रत्यक्षसे देख तो रहे हैं मगर जो देख रहे हैं जो समझ रहे हैं वह है ही नहीं। जैसे कहीं बहुतसे बाल पड़े हुए हैं और उनमें मच्छरोंका ज्ञान हो गया। होता है ऐसा कि बहुतसे बालोंके झुण्ड पडे हों एक जगह तो उनपर मच्छर जैसे प्रतीत होते हैं। तो उनमें भी भ्रम हो सकता है कि इकट्ठे ये केशोंमें मच्छरोंका जो प्रत्यक्ष हो रहा है वह है असत् तो कोई प्रत्यक्षका विषय यदि असत् निकल आया तो इसके मायने यह तो न हो पडेगा कि प्रत्यक्षके विषय सारे ही असत् होते हैं। यहां शंकाकार कहता है कि प्रत्यक्षाभासका विषय असत् है। सप्रत्यक्षका विषय असत् है। सत्यप्रत्यक्षका विषय असत् नहीं होता इसलिए यह उदाहरण देकर और विवक्षाका विषय सत ही होता है, यह क्यों सिद्ध करते हैं ? हाँ इसमें जो मच्छरोंका ज्ञान हुआ वह प्रत्यक्षाभास है इसलिए असत् है। यदि सत् प्रत्यक्षका विषय होता तो असत् न होता। वह तो प्रत्यक्षाभासका विषय है इस कारण वह असत् रहा आयगा। इसके समाधानमें कहते हैं कि ऐसी ही बात यहां मानलो कि जो असत्य विवक्षाका विषयभूत हो सो असत् है पर जो सत्य विवक्षाका विषयभूत हो उसे मत कहो।

विकल्परूप होनेसे विवक्षामें सत्यत्वके अभावकी शंका और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि ऐसी कोई विवक्षा नहीं होती जो सत्य हो, क्योंकि विवक्षा तो विकल्परूप है और विकल्प सारे असत् हैं। जैसे मनका राज्य तो यह विकल्प ही तो है और असत् है। तो जितनी भी विवक्षायें होती हैं वे सब असत् होती हैं। इसके उत्तरमें कहते हैं कि इतना तो बता दो कि तुम जो यह अनुमान कर रहे हो यह भी सच है कि झूठ ? यदि कहो कि सच है तो इसीसे ही तो हेतुको व्यभिचार आ गया। यह कहना कि विवक्षा सब असिद्ध होती हैं तो तुम जो यह कह रहे यह सत्य निकल आया। और, है विवक्षा। तो इसीमें हेतुका व्यभिचार है। और यदि कहोकि तुम्हारी यह बात असत्य है तो असत्से साध्यकी सिद्धि नहीं हुआ करती, शंकाकार कहता है कि जिस अनुमान विकल्पसे पदार्थको जानकर प्रवृत्ति करने वाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुरुष अर्थक्रियामें अर्थात् काममें विसम्वाद नहीं करता है। उस अनुमान विकल्पका विषय तो सत् ही माना जाना चाहिए। पहिले यह उपालम्भ दिया था कि अनुमान यदि सत्य मानते हो तब ही हेतुसे व्यभिचार आता है और यदि असत्य मानते हो तो उससे साध्यकी सिद्धि नहीं होती। इसके उत्तरमें शंकाकार यह कह रहा है कि जिस अनुमान विकल्पसे पदार्थको जानकर पुरुष अपने उस काममें लग जाता है जैसे कि उस पदार्थको जानकर काम करना चाहिए, उसमें विसम्वाद नहीं करता। इससे सिद्ध है कि अनुमान विकल्पमें जो विषय आया है वह सत् ही है। इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि बात तो ठीक ही कही है और इसी प्रकार प्रकृतमें भी लगा लो कि जिस विवक्षाविशेषसे अर्थको कहनेकी इच्छा बनाकर प्रवृत्ति करता हुआ विसंवाद न कर रहा हो पुरुष उस विवक्षाका विषयभूत कैसे असत् कहा जा सकता है। जैसे द्रव्य दृष्टिसे पदार्थका ऐक्य जाना तो ऐक्य जानकर जो कुछ उसके फलमें ज्ञानका अनुभव करना चाहिए वह करता है उसमें विवाद नहीं करता और पर्यायार्थिकनयसे भेदको समझ रहा है तो भेदको जानकर एक सत्में द्रव्य, गुण, कर्म, पर्याय, शक्ति, परिणतियां सबको पृथक पृथक समझकर जो एक समवंध बनना चाहा उस अर्थक्रिया में भी विसम्वाद नहीं करता इस कारणसे विवक्षाका और अविसम्वादके विषयभूत, उस पदार्थको असत् क्यों कहा जा रहा ? उसे भी सत् कहें।

अविवक्षाके विषयके भी सत्वका प्रतिपादन—शङ्काकार कहता है कि चलो विवक्षाका विषयभूत पदार्थको सत् मानलो ! जिसको कहनेकी इच्छा कर रहे हो वह सत् भले ही रहा आये लेकिन जो अविवक्षाका विषयभूत है याने जिसे कहना चाहता ऐसा पदार्थ तो असत् ही कहलायेगा। यदि अविवक्षाका विषयभूत सत होजाय तो उसकी अविवक्षा न बन सकेगी। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि ऐसा नियम बनाते हो कि जो अविसम्वादका विषय हो वह असत ही होता तो हे क्षणिकवादियो, यह तो बतओ कि तुम्हारा जो पदार्थका स्वलक्षण है, जो कुछ माना है एक समय-वर्ती पदार्थका धर्म वह स्वलक्षण वचनसे कहा जाता या नहीं ? सो माना ही है क्षणिकवादियोंने कि स्वलक्षण वचनोंके द्वारा नहीं कहा जाता तो जब समस्त वचनों के द्वारा नहीं कहा जाता तो जब समस्त वचनोंके विषयसे अलग हो गया पदार्थका स्वलक्षण तो अब उससे ही इस हेतुका व्यभिचार आयगा कि मान तो रहे हो उसे वचनोंके अगोचर और सत मान रहे हो तो जो यह प्रतिज्ञा अभी की थी कि जो वचनका विषयभूत नहीं है वह असत है। तो समस्त वचन अर्थात् कोई भी वचन जिस स्वलक्षणको कहनेमें समर्थ नहीं है, वचनविषयके बहिर्भूत है वह स्वलक्षण भी फिर असत बन जायगा।

अविवक्षाविषयत्वके अभावैकान्तका प्रतिषेध—अब यहाँ शब्दाद्वैतवादी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शङ्काकार कहता है कि देखिये ! जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब वाच्य हैं इसलिए अविवक्षाका विषयभूत तो कोई होता ही नहीं है, सब वचनागोचर हैं और सब ज्ञानों के साथ शब्द जुड़ा हुआ है। शब्दकी बात हुए बिना न तो पदार्थ ज्ञानमें आयगा और न ज्ञान ज्ञानरूप बनेगा। जैसे आँखों देखते हैं तो समझमें आता भींट तो भीं और ट ये ये दो शब्द भी छुड़े हुए ध्यानमें आये। तो अर्थके साथ, ज्ञानके साथ जितने भी प्रतिभास होते हैं सबके साथ शब्द जुड़ा हुआ ही है । इसलिए अविवक्षाका विषय कुछ होता ही नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा एकान्त करना ठीक नहीं है कि सभी वस्तु वाच्य हैं, उनका कोई नाम है। भला बतलाओ कि किसीका नाम रख दिया घट, तो घट नामका भी कोई नाम है क्या ? अथवा उसके जो हिस्से हैं शब्दके घ और ट तो घ का भी कोई नाम है क्या ? ट का भी कोई नाम है क्या? तो नामका कोई नामान्तर नहीं होता और नामके भागरूप शब्दोंका भी कोई नामान्तर नहीं होता। तो इसीसे ही विरोध आ गया कि सब वस्तु नामसे गुम्फित है। यदि कहो कि नामका भी नामन्तर है, जैसे घट पदार्थ है उसका तो नाम धर दिया घट। अब घट जो नाम है वह भी तो चीज है, उसका क्या नाम है ? इसके उत्तरमें यदि कहो कि उसका भी कोई दूसरा नाम होता है तो अनवस्था दोष हो जायगा। अब जो नामान्तर बतावोगे उसका क्या नाम है, वह भी तो बताओ ? तो इस तरह अनवस्था दोष होनेसे यह न कहा जा सकेगा कि नामका भी कोई नामान्तर है और जब नामका या शब्दांशका कोई नाम नहीं है तो यह प्रतिज्ञा भङ्ग हो जाती है शङ्काकारकी कि समस्त पदार्थ वस्तु सब सत नामसे बींधा हुआ है, अब यह बात कहाँ रही ? शंकाकार यदि यह कहे कि नाम यद्यपि अविवक्षाके विषयभूत है फिर भी उसका सत्त्व है। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर अन्य पदार्थ भी, अन्य शब्द भी विशेषण भी अविवक्षाके विषयभूत होकर भी सत् ही क्यों न मान लिए जायेंगे ? तब एक नाम द्वारा वाग्विषयसे अतीत होकर भी सत माना जा रहा है तो अविवक्षाका विषयभूत जो कुछ भी हो वह भी सत हो जायगा।

विधिप्रतिषेधात्मक पदार्थमें विवक्षा व अविवक्षाके योगकी सिद्धि—इस प्रकार विधिधर्म और प्रतिषेधधर्म ये सत् ही हैं दो विवक्ष और अविवक्षाके साथ इनका सम्बन्ध जुड़ जाता है अर्थात् विधि और प्रतिषेधमें एककी विवक्षा है तो दूसरेकी अविवक्षा है इस तरह पदार्थ विधिनिषेधात्मक है और जिसकी विपक्षा है उसमें उसकी प्रधानता है जिसकी विपक्षा नहीं है उसकी यहां गौणता है। अन्यथा अर्थात् पदार्थको विधिनिषेधात्मक नहीं माना जाय और उसमें विवक्षा और अविवक्षा की दृष्टिसे उसका योग न माना जाय तो पदार्थकी दृष्टिसे उसका योग न माना जाय तो पदार्थकी निष्पत्ति ही नहीं हो सकती। जो अर्थक्रिया चाहने वाले पुरुष हैं वे अर्थ की निष्पत्तिकी अपेक्षा बिना उनकी विवक्षा और अविवक्षाका योग नहीं हो सकता :

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिससे कि विवक्षा और अविवक्षा अथवा विधि प्रतिषेधके न होनेपर भी उस पदार्थ की उपपत्ति मान ली जाय।

औपचारिक विवक्षामें अर्थक्रियाकी सिद्धिका अभाव—शंकाकार कहता है कि स्वलक्षणकी तो विवक्षा अविवक्षा होती नहीं, विवक्षा अविवक्षा होती है व्यावृत्तिकी सो परके उपचारसे हम स्वलक्षणकी विवक्षा अविवक्षा मान लेंगे। शंकाकार क्षणिकवादीका यह सिद्धांत है कि वचनके द्वारा सामान्य कहा जाता है। विशेष नहीं कहा जाता विशेष होता है पदार्थका स्वलक्षण (असाधारण धर्म) तो पदार्थका जो खुद धर्म है वह तो प्रत्यक्षका विषयभूत तो है पर वचनोंके द्वारा नहीं कहा जाता, जैसे गौ कहा तो वचनोंके द्वारा गौ अर्थ नहीं कहा गया किन्तु जो गौ नही है उन सब पदार्थोंकी व्यावृत्ति कही गई है। तो यों अन्यापोह वचनोंका विषय है किन्तु स्वलक्षण वचनोंका विषय नहीं है फिर भी विचार करके हम स्वलक्षणकी विवक्षा और अविवक्षा बना लेते हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये-उपचारसे अर्थ क्रिया नहीं बनती। यदि किसी पुरुषका नाम अग्नि रख लिया तो उस पुरुषपर रोटी न पक जायगी। या किसी बालकका नाम सिंह रख लिया तो कहीं उसमें सिंहकी वीरता तो न आ जायगी। तो उपचारसे अर्थक्रिया नहीं बना करती। यदि स्वलक्षण उपचारसे विवक्षित अविवक्षित कहोगे तो वह तो न कहनेकी तरह है।

वस्तुस्वभावमें विवक्षा व अविवक्षाके योगका शंकानिराकरणपूर्वक समर्थन—शंकाकार कहता है कि विवक्षा और अविवक्षासे अन्य व्यावृत्ति हो जानी जाती है, वस्तुका स्वभाव नहीं जाना जाता है। वस्तुका जो स्वरूप है। जैसा आत्माका चैतन्यस्वरूप है तो यह चैतन्यस्वरूप है तो यह चैतन्य वचनोंके द्वारा न जाना जायगा किन्तु अचेतनता नही है यह बात वचनोंसे समझी जायगी। चाहे नाम चैतन्य ही लिया जाय पर उससे समझ यह बनेगी कि अचैतन्यकी व्यावृत्ति है तो वचनोंसे विवक्षासे अविवक्षासे अन्यापोह ही युक्त होता है। वस्तु स्वभाव नहीं कहा जाता। जिस कारणसे कि विवक्षा और अविवक्षासे सतको विषयभूत कहा जाय। इस प्रकरणमें मूल शंका यह थी कि विवक्षा और अविवक्षा इन दोनोंका विषय असत् है ही नहीं कुछ इस कारण व्यवस्था करना युक्त नहीं है। इसको मूल शंकासे यहां अन्त में निष्कर्षरूपमें शंकाकार दुहरा रहा है कि विवक्षा और अविवक्षासे अन्यापोह ही जाना जाता है इस कारण विवक्षा और अविवक्षाका विषय कोई सत नहीं है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि शब्दोंसे यदि अन्यापोह ही जाना जाय, पदार्थ न जाना जाय तो पदार्थमें प्रवृत्तिका विरोध हो जायगा। जैसे किसीने कहा गाय लाओ तो अब शब्द द्वारा जो यह समझा गया कि अगोव्यावृत्ति जो जो गाय नहीं है उन सबकी व्यावृत्ति तो क्या उस व्यावृत्तिमें दूध निकलेगा अथवा उस व्यावृत्तिमें कोई काम किया जा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकेगा ? तो शब्दोंके द्वारा वस्तुमें जो परिणति हो रही हैं उससे ही यह सिद्ध है कि शब्द पदार्थको कहा करते हैं।

व्यावृत्ति व व्यावृत्तिवानमें एकत्वका अध्यारोप होनेसे पदार्थमें प्रवृत्ति माननेकी असंगतता—शङ्काकार कहता है कि बात यों हो गयी कि व्यावृत्ति और अव्यावृत्ति इन दोनोंमें एकत्वका आरोप करनेसे व्यावृत्तिवानमें व्यावृत्ति मान ली जाती है। जैसे गौ कहा तो गौ का असलमें अर्थ है अगौव्यावृत्ति अब लोग क्यों समझ जाते हैं कि गायको गौ शब्दसे कहकर गायको यों समझा जाता है कि अगो-व्यावृत्ति। और अगौव्यावृत्ति वाले पदार्थ मानते वे गौ, तो इन दोनोंमें एकत्वका अध्यारोप हो गया, वासनाकी वजहसे वहाँ उन दोनोंमें एकता समझ बैठते हैं इस कारणसे उनकी अर्थमें प्रवृत्ति हो जाती है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रथम तो यही बात असंगत लग रही है कि व्यावृत्ति और व्यावृत्तिवान पदार्थ यों तो कह डालते हो, पर वह खुद पदार्थ जो शब्द द्वारा कहा गया उसका नाम लेनेकी कसम खा रखी है बोलेंगे शब्दसे उस पदार्थको मगर प्रथम तो व्यावृत्ति व्यावृत्ति रटे जायेंगे। जब कोई दूषण दिया जाता है तो व्यावृत्ति और व्यावृत्ति वाले पदार्थ यों कहकर उस गायको ही कहते मगर गाय अर्थको सीधा नहीं कह सकते, क्योंकि आग्रह है। प्रथम तो यह असंगत बात है। दूसरी बात यह है कि अध्यारोप तो विकल्परूप होता है। जो कह रहे हो कि व्यावृत्तिपनाके साथ एकत्वका अध्यारोप किया है तो यह अध्यारोप क्या विकल्प है और विकल्प पदार्थका विषय नहीं करता। विकल्पका विषय पदार्थ नहीं है, वह तो ख्याल है। इस कारणसे जब जब व्यावृत्ति ही अपने पदार्थको विषय नहीं कर सकता याने अगोव्यावृत्ति जब किसीको विषय नहीं करता, केवल इतना ही जानता है कि जो गाय नहीं हैं उनकी व्यावृत्ति। तो जब व्यावृत्तिसे पदार्थ जाना ही नहीं गया तो उस पदार्थमें और व्यावृत्तिमें एकत्वका आरोप ही कैसे बन सकेगा ? आरोप जिसमें किया जाता है उन दोका ज्ञान तो होना चाहिए और सम्बन्ध होना चाहिए, जब व्यावृत्तिका विषय पदार्थ न रहा, अगौव्यावृत्तिका विषय गौ न रहा तो उस व्यावृत्तिका गौ पदार्थ में एकत्वको कैसे बनाया जा सकता है ! अतः शब्द सीधे पदार्थको कहते हैं, यह मान लेना चाहिए जैसा कि सभी लोग समझते हैं।

व्यावृत्तिरूप सामान्यसे पदार्थको (स्वलक्षणको) अध्यारोपविकल्पका विषय बतानेकी असंगतता—यह कहा जा रहा था कि व्यावृत्ति जब अपने अर्थको विषय नहीं करती तो उसके साथ व्यावृत्तिका एकत्व आरोप कैसे बन सकता है ? जैसे अगौव्यावृत्ति। यदि गायको नहीं जानते हैं तो उस व्यावृत्तिका और गायके साथ एकत्वका आरोप कैसे किया जा सकता है ? इसपर शंकाकार कहता है कि सामान्यसे अर्थात् व्यावृत्ति द्वारा पदार्थ जो जाना गया वह अध्यारोप रूप विकल्पका विषय है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही याने जो विकल्प बनाया है उसका विषय सामान्यरूप पदार्थ होता ही है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि तब यह बतलाओ कि वह भी क्या अन्याबृत्तिरूप है? अर्थात् असामान्यसे व्यावृत्त होना इसको सामान्यरूप कहते हैं। तो क्या सामान्यका भी यही अर्थ है कि असामान्यसे व्यावृत्ति होना। यदि यह अर्थ है तो व्यावृत्तिके द्वारा ही व्यावृत्तमें एकत्वका आरोप हुआ, फिर पदार्थमें प्रवृत्ति कैसे होगी? शंकाकार तो ऐसा कहता था कि अन्य व्यावृत्तिसे सामान्य जाना और उस सामान्यका स्वलक्षणमें अन्यापोह है इसलिए लोग निर्विकल्प प्रत्यक्षसे उन पदार्थोंको जानकर सामान्यरूप साथ लेते हैं और फिर उसके अर्थकी प्रवृत्ति होती है। सो अब तो व्यावृत्तिसे ही व्यावृत्तिका एकत्व आरोपित हो गया। पदार्थको तो छुवा ही नहीं अतएव प्रवृत्ति चाहने वाले पुरुषोंको भी एक एक करके व्यक्तिगत परस्पर हटी हुई वास्तविक परिणति विशेष मानना चाहिए। हैं सब पदार्थ और वे परस्पर एक दूसरेसे हटे हुए हैं। प्रत्येक पदार्थमें उसका वस्तुधर्म है, वह ही स्वलक्षण है ऐसा मानना चाहिए। अब यहां एक जिज्ञासाका और स्पष्टीकरण करते हैं कि जो लोग यह कहते हैं कि भेद ही परमार्थसे सत् है। पदार्थका अभेद सत् नहीं है वह तो कल्पनासे माना गया है। निरंशवादी प्रत्येक पदार्थके क्षण-क्षणको अलग मानते हैं तो उनका कहना है कि भेद ही वास्तविक सत है। ऐक्य अभेद वास्तविक सत नहीं है। क्योंकि वह तो कल्पनासे ही माना गया है। जैसे कि जो एक सामान्य है वह ही वास्तविक है। अब उन सबमें मनुष्यत्व यह तो कल्पनासे माना गया है। कोई मनुष्यत्व पदार्थ तो नहीं है। इसी प्रकार एक सतमें भी जो रूप ज्ञानमें आया रूपक्षण पदार्थ है, रस ज्ञानमें आया तो वह रसक्षण अलग पदार्थ है, इस तरहसे भेद ही वास्तविक सत है अन्यथा विरोध हो जायगा याने भेदमें अभेद कैसे हो सकता है? और, कोई पुरुष कहता है कि अभेद ही वास्तविक सत् है। अद्वैतवादी अभेदका ही सिद्धान्त स्वीकार करता है तो उनकी ओरसे तो यही सिद्धांत बनता है कि अभेद ही वास्तविक सत् है। पदार्थमें भेद नहीं है। भेद तो कल्पनासे आरोपित किए हैं। जैसे कि सारा विश्व सत् हैं, अब उस एक सत्को कल्पनासे भिन्न भिन्न रूप दिया है कि यह जीव है, यह पुद्गल है। जैसे कि स्याद्वाद शासन वाले भी कहते हैं कि पदार्थोंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे परिज्ञान किया जाता है। तो अब मानलो कि विश्व सारा एक पदार्थ है, सत् अद्वैत है, उस ही एक सतका नाम स्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा समझनेके लिए भेद कर दिया। जैसे द्रव्यकी अपेक्षा पुद्गल है क्योंकि वह द्रव्य वस्तु जान लेता है। क्षेत्रकी अपेक्षा उस ही सतको आकाश कह दिया। कालकी अपेक्षा उस ही सतका काल द्रव्य कह दिया। भावकी अपेक्षा उस ही सतको चैतन्य स्वरूप कह दिया, नामकी अपेक्षा धर्म द्रव्य कह दिया। नाम कहते हैं उसे जो व्यवहार चलाये नाम बिना कुछ व्यवहार नहीं, तो वह धर्म द्रव्य हो गया। स्थापनाकी दृष्टिसे धर्मद्रव्य हो गया। स्थापना करे सो धर्म द्रव्य है। तो सत एक है। कल्पनायें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करके ६ भागोंमें बांट लिया। इसी प्रकार जहां जहां भी जो कुछ भेद सोचा जाता है वह सब काल्पनिक है। वास्तविक तो अभेद ही सत है, अन्यथा विरोध आ जायगा। ऐसा अद्वैतवादी कहता है। उन दोनोंके प्रति अब आचार्यदेव कहते हैं—

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृत्ती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुण मुख्यविवक्षया ॥ ३६ ॥

वस्तुमें भेद और अभेदकी सद्भूतता—भेद और अभेद दोनों ही प्रमाण के विषयभूत हैं, सतस्वरूप हैं, काल्पनिक नहीं हैं, और वे दोनों भेद और अभेद एक ही जगह गौण और मुख्यकी अपेक्षा अविरुद्धरूपसे रहते हैं। ऐसे हे प्रभो! आपके शासनमें कहा है और वे भेद और अभेद दोनों एक ही वस्तुमें अभेदरूपसे कैसे रहते हैं? गौण और मुख्यताकी विवक्षासे रहते हैं। जब भेदको मुख्य किया तो अभेद गौणरूपसे है, जब अभेदको मुख्य किया तो भेद गौणरूप से है। अभेद सत ही है, कल्पनाका विषय नहीं है, क्योंकि प्रमाणका विषय होनेसे। यह जो अनुमान प्रयोग किया जा रहा है, उसमें अभेद यहाँ पक्ष बनाया और वह सत है यह साध्य बनाया जा रहा और प्रमाणका विषयभूत होनेसे, यह हेतु दिया जा रहा है। जैसे कि भेदको जो लोग सत मानते हैं, कल्पनाका विषय नहीं मानते तो किस बलपर कि भेद प्रमाणका विषयभूत है, तो इसी तरह अभेद भी प्रमाणका विषयभूत है, इस कारण वह भी वास्तविक सत् है, कल्पनाका विषय नहीं है। इसी प्रकार जो भेदको सत नहीं मानते उनके लिए यह अनुमान प्रयोग है कि भेद सत ही है, कल्पना नहीं है, क्योंकि प्रमाणका विषय होनेसे अभेदकी तरह। जो अभेदको वास्तविक मानते हैं तो क्यों मानते? कि प्रमाणका वह विषयभूत है, यही हेतु देकर तो कहते हैं। तो इसी हेतुसे भेद भी सत् सिद्ध होता है। अब दोनोंकी बात निरखिये! भेद और अभेद दोनों ही सत हैं क्योंकि प्रमाणके विषयभूत होनेसे, अपने इष्ट तत्त्वकी तरह। जैसे जिन लोगोंने जो कुछ अपना सिद्धान्त माना है तो वह उनको प्रमाण गोचर लगता है अतएव वह सत माना गया। तो भेद और अभेद ये दोनों ही प्रमाण गोचर होनेसे सतरूप ही हैं। इस तरह जो दोनोंको ही काल्पनिक मानते हैं उनका भी निराकरण हो जाता है। यहाँपर जो उदाहरण दिया है वह साध्य साधनसे रहित नहीं है, क्योंकि भेदवादी भेदको प्रमाणगोचर और सत मानते हैं। अभेदवादी अभेद को प्रमाणगोचर और सत मानते हैं। इसी प्रकार जो भेद अभेद दोनोंको ही काल्पनिक कहते हैं वे भी तो कुछ न कुछ अपना इष्ट तत्त्व प्रमाणगोचर मानते हैं और सत मानते हैं। तो तीनों ही उदाहरण साध्यसाधनसे रहित नहीं हैं। अतएव भेद और अभेद ये दोनों ही वास्तविक सिद्ध होते हैं, वे काल्पनिक नहीं हैं। एक ही वस्तुमें भेद और अभेद जो कि परमार्थभूत हैं वे हे प्रभु! आपके सिद्धान्तमें विरुद्ध नहीं हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि प्रमाणके विषयभूत हैं वे। जैसे कि सभी लोगोंको अपना इष्ट तत्त्व प्रमाण गोचर है तो वह परमार्थसत् भी है। इस तरह यहाँ इस कारिकामें भेद और अभेद दोकी बात कही गई है, पर साथ ही यह भी समझ लेना कि परस्पर निरपेक्ष और अभेद विरुद्ध हैं, क्योंकि प्रमाणके विषय न कहलानेसे। सर्वथा भेद ही मानना, भेदकी अपेक्षा न रखना ये विरुद्ध पड़ेंगे, क्योंकि ये प्रमाणके विषयभूत नहीं हैं।

प्रमाण और अप्रमाणके विषयका विवरण—अब यहाँ कोई जिज्ञासा करता है कि वह प्रमाण क्या है जिसका विषयभूतपना यहाँ हेतुरूपसे कहा जा रहा है, तो सुनो, जो अविसम्वादी ज्ञान है उसे प्रमाण कहते हैं, क्योंकि वह ज्ञान अनधिगत पदार्थोंका परिज्ञानरूप है। जो ज्ञान अन्य प्रमाणसे न निश्चित किए हुएको जानता हो वह ज्ञान प्रमाण कहलाता है। अर्थात् स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण है अधिगमका अर्थ है अपने और पदार्थके आकारका निश्चय करना। स्वयंके स्वरूपका और पदार्थके स्वरूपका निर्णय रखनेका नाम है अधिगम। वहां और स्वाकार अर्थाकार कथंचित् भेदाभेदरूप है अर्थात् ज्ञान स्वयं और वहां प्रतिभात हुए पदार्थका स्वरूपाकार ये दोनों बतलायें क्या सर्वथा भिन्न हैं ? सर्वथा भिन्न नहीं है तो क्या सर्वथा एक है ? ज्ञानाकार औरज्ञेयाकार न सर्वथा एक है न सर्वथा भिन्न हैं। कथंचित भेदरूप है कथंचित् अभेदरूप हैं। इनमेंसे किसी एकका लोप करनेपर अर्थक्रिया नहीं बन सकती है। यों कि एकांतमें भी सर्वथा ही अर्थक्रिया की अनुपत्ति है। भेदका एकांत करें वहां भी अर्थक्रिया नहीं बनती। अभेदका एकांत करें वहां भी अर्थक्रिया नहीं बनती। तब इस प्रकार भेद व अभेद जो कि एक दूसरेसे रहित नहीं हैं। परस्पर सापेक्ष है उसे प्रमाण विषय करता है, क्योंकि बाह्य पदार्थोंमें और बहिरंग पदार्थोंमें जो स्वलक्षण है अथवा सामान्य लक्षण है वह भेद और अभेद रूपसे ही हम पा रहे हैं। जैसा कि एकांतवादियोंने माना उस तरहसे नहीं पाया जाता। जो कुछ भी हम आंखों देखते हैं तो वह कुछ एक समझमें आया और फिर उसमें अनेकता भी विदित होती है तो हम सभी पदार्थोंमें चाहे ज्ञानस्वरूप आत्माको देखें या बाह्य पदार्थोंको देखें सब भेदाभेदस्वरूप विदित होते हैं।

स्याद्वादविधिसे छोटा, बड़ा, भेद अभेद आदिकी प्रतिपत्ति—उक्त प्रकार जब भेदैकांत न रहा और अभेदैकांत न रहा और परस्परनिरपेक्ष उभयैकांत न रहा और अनुभयैकान्त न रहा तब वस्तु सप्तभङ्गी विधिसे इन सब धर्मोंको सिद्ध करना चाहिए। ये सब एकांतरूप नहीं है, क्योंकि इस प्रकारसे इस स्वभावरूपकी अनुपलब्धि है। तो यहाँ स्वभावानुपलब्धि नामक हेतुसे यह सिद्ध होता है कि वस्तु न भेदैकान्तरूप है, न अभेदैकांतरूप है न परस्परनिरपेक्ष उभयैकांतरूप है, तथा न अनुभयैकांतरूप है। क्योंकि उस प्रकारके स्वभावकी उपलब्धि नहीं है। स्वयं जो उप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लब्धिरूप प्राप्त हो सकता है वह जब न पाया जाय तो सिद्ध है कि उसका अभाव है। यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि हम देखते हैं कि जिन पदार्थोंका सूक्ष्म आकार है वह स्थूल स्वभावकी अपेक्षा न रखकर नहीं समझा जाता। जैसे बेर छोटा है कैंथ आदिक से। जब उसकी दृष्टिमें कैंथ है तभी तो वह बेरको छोटा कह रहा है। जैसे कहा कि बेर बड़ा है चनासे तो जब चनाकी अपेक्षा की तभी तो बेर बड़ा सिद्ध हुआ है अथवा कहा कि चना छोटा है बेर आदिकसे, तो जब बेर उसकी दृष्टिमें है तभी चनेको छोटा बताया, तो यहां जो हम सूक्ष्म और स्थूल आकार पाते हैं तो सूक्ष्म और स्थूल स्वभावको छोड़कर अर्थात् उनकी अपेक्षा न रखकर उनसे भिन्नरूपसे हम सूक्ष्म और स्थूल आकारको नहीं जान पा रहे हैं। प्रत्यक्षमें स्वलक्षण और सूक्ष्म जो परमाणु हैं सो ये प्रतिभासमें नहीं आ रहे, स्थूल घट आदिकरूप प्रतिभासमें आ रहे हैं, परमाणुने जिसका कि लक्षण सूक्ष्म माना और स्वलक्षण माना वह प्रत्यक्षसे कहाँ विदित हो रहा? जो चीज प्रत्यक्षसे विदित नहीं होती उसे कहते हो वास्तविक है और जो बात प्रत्यक्षसे विदित होती उसे कहते हो कि यह काल्पनिक चीज है। तो सूक्ष्म घटादिक उस प्रतिभासमें आ रहे हैं और वे आते इन अन्य पदार्थोंके सूक्ष्मको निरखकर इस कारण भेद और अभेद परस्पर सापेक्ष होकर ये सद्भूत हैं यह मानना चाहिए।

प्रत्यक्षमें परमाणुओंका आकार न आनेपर भी स्वलक्षणका प्रत्यक्षसे जानना बतानेकी बिना मान्य दिये वस्तुको खरीदनेकी तरह अयुक्तता— शंकाकार कहता है कि परमाणुओंमें जो कि अत्यन्त निकट हैं, किन्तु एक दूसरेसे सम्बन्ध नहीं हैं ऐसे ही तो स्कंध बने हैं सो इन स्कंधोंमें अति निकट किन्तु एक दूसरे से सम्पर्क रहित इन परमाणुओंमें जब निर्विकल्प प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति होती है तो यह प्रतिभासमान तो इसी प्रकार होना चाहिए, लेकिन विभ्रमके कारणभूत वासनाविशेष के कारण स्थूल पदार्थोंके ज्ञानमें और परमाणुओंमें असत् ही स्थूल आकारको एक कल्पना बनाता है और यों स्थूल आकारको बताने वाली कल्पना उन परमाणुओंकी कल्पना करा देती है। जैसे कि केशका झुण्ड पड़ा हुआ हो तो उसमें वास्तवमें तो एकता है नहीं, प्रत्येक बाल निराले निराले हैं, किन्तु भ्रम होनेके कारण उसमें एकत्व का प्रतिभास होता है इसी प्रकार परमाणु तो है निहाला निराला पर वासना विशेष के कारण इन सबमें स्थूल आकारकी कल्पना होती है। वस्तुतः ये स्थूल आकार स्कंध वगैरह कुछ नहीं हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका करना युक्त नहीं है, क्योंकि फिर तो बाह्य पदार्थ विषयक और घट विषयक प्रत्यक्ष होता है, फिर उसमें अभ्रांत भी न रहा। जब हम इन दिखने वाले स्कंधोंमें स्थूल आकारका भ्रम बताते हैं तब फिर जो कुछ भी जाना जाय यभी प्रत्यक्ष अभ्रांत न रहेंगे और कल्पना से रहित भी न रहेंगे। क्योंकि हम अब कल्पनासे ही तो इस स्थूल आकारको जानते हैं। ऐसा शंकाकारने कहा है। तो व्यवहारसे भी तथा परमार्थसे भी प्रत्यक्ष कल्पना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से रहित है और अभ्रांत है इस प्रकार इस लक्षणमें असम्भव दोषका प्रसंग होता है कभी भी प्रत्यक्ष विधिमें अर्थात् प्रत्यक्षमें ज्ञानमें परमाणुओंका कभी प्रतिभास नहीं होता। ये सब परमाणु प्रत्यक्ष बुद्धिमें तो अपनेको समर्पण करते नहीं और यह शंकाकार उनको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेकी इच्छा करता है। तो इसके मायने यह हुआ कि बिना मूल्य दिए ही वस्तु खरीदनेकी मंसा रखते हैं। क्योंकि प्रत्यक्षज्ञानमें पदार्थका प्रतिभास तब मानते हैं ये जब उनका आकार आये। अवयवोंका आकार प्रत्यक्ष ज्ञानमें तो आता नहीं और खुद भी उनके प्रत्यक्षको अब विषयभूत मानते हो तो इसके मायने यह ही हुआ कि बिना मूल्य चुकाये ज्ञान कर लिया, बिना आकार आये पदार्थका ज्ञान कर लिया। अपने अवयवोंसे भिन्न कोई एक अवयवी तो नजर आता नहीं और फिर भी उसे कोई माने तो वह बिना मूल्य चुकाये खरीदनेकी तरह है। जैसे कोई बिना मूल्य दिए जबरदस्ती खरीदनेका नाम लेकर चीज ले ले तो वह अन्याय है इसी प्रकार यहां भी परमाणुओंका आकार तो प्रत्यक्ष ज्ञानमें आया नहीं, फिर भी उसका प्रत्यक्ष मानते हो तो यह अयुक्त ही बात होगी तुम्हारे सिद्धन्तमें अवयवोंसे भिन्न कोई एक अवयवी जो कि अपने सूक्ष्म अवयवोंसे भिन्न हो महत्ताको प्राप्त होता हुआ प्रत्यक्षमें प्रतिभासित नहीं होता, जैसे कि कुण्डमें दही रखा है तो उस कुण्डसे भिन्न दहीका जैसे बोध हो जाता है उस तरह तो वहाँ सूक्ष्म अवयवोंसे भिन्न किसी एक अवयवीका बोध नहीं होता। इस प्रकार प्रत्यक्षका लक्षण अव्यभिचारी होगा न रह सकेगा। देखिए यह अवयव और यह अवयवी और इन दोनोंमें है है समवाय ऐसे तीन प्रकारका आकार प्रत्यक्षमें अनुभूत कभी भी नहीं होता। तो इसी कारणसे बताया है कि अवयवोंसे भिन्न किसी एक अवयवीका ज्ञान करना बिना मूल्य चुकाए खरीदना ही हुआ, इसी प्रकार परमाणुओंका आकार तो प्रत्यक्षमें आता नहीं और उसे जान लिया है। तो इसके मायने यह हुआ फिर यहां भी बिना मूल्य चुकाए वस्तुका जाननरूप खरीदना कर लिया गया।

समवायसे अवयवीका अवयवों अभिन्नकी तरह प्रतिभासकी कल्पना में अनिष्टापत्ति—शङ्काकार कहता है कि अवयवोंसे अभिन्नकी तरह यह अवयवी समवायके कारण प्रतिभासित होता है। वस्तुतः अवयव भिन्न हैं और अवयवी भिन्न हैं पर उसमें समवाय हो गया इससे एक पदार्थकी तरह मालूम होता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात संगत नहीं है, क्योंकि फिर तो सभी जगह जब-जब अवयवोंका प्रत्यक्ष हो रहा हो तो वह भ्रान्त हो जायगा। अवयवसे भिन्न अवयवीका अभेदरूपसे ग्रहण होनेका नाम भ्रान्तपना है और इस तरह फिर अव्यभिचारीपना प्रत्यक्षका लक्षण बन जाना असम्भव हो जायगा। तो जैसे अवयवोंसे भिन्न अवयवीने प्रत्यक्ष ज्ञानमें अपना समर्पण नहीं किया और प्रत्यक्ष माने तो वह असङ्गत है। परमाणु परमाणुवोंने प्रत्यक्ष ज्ञानमें अपना समर्पण नहीं किया और फिर भी प्रत्यक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं माना तो यह असङ्गत हो जायगा। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अवयव और अवयवीका भी प्रत्यक्षमें प्रतिभास होना यह भी बिना मूल्य चुकाये खरीदने वालेकी तरह बात है अथवा समवायमें प्रतिभास मानना यह भी उसी तरह असङ्गत है।

वस्तुको क्षणिक व परमाणुरूप सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त सत्त्वात् हेतुकी सदोषता—शङ्काकार कहता है कि देखिये! समस्त वस्तुएं क्षणिक और परमाणुरूप हैं सत्त्व होनेसे। नित्य और स्थूल रूपमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया बनती है और न एक साथ अर्थक्रिया बनती है। तो जब नित्य और स्थूल रूपमें सत्त्व ही न रहा तो इससे सिद्ध है कि सभी वस्तुएं क्षणिक और परमाणुरूप हैं सत्त्व होनेसे। इस अनुमानसे वस्तुमें स्वलक्षणका निश्चय कर लिया जायगा। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि इस अनुमानमें जो हेतु दिया है वह विरुद्ध हेतु है। यह कहना कि नित्य और स्थूलरूप प्रत्यक्षमें आता नहीं, उनमें अर्थक्रिया होती नहीं, अतएव सत्त्व नहीं है यह बात कहना बिल्कुल विरुद्ध है। सत्त्व जो भी होता है वह कथंचित नित्य और अनित्य स्वरूप होता है, सूक्ष्म और स्थूल स्वरूप होता है। सर्वथा नित्य अनित्य आदिक एकान्तरूपमें क्रम और यौगपद्यसे अर्थक्रियाका विरोध है अर्थात् यदि सर्वथा नित्य माना जाय तो वहाँ भी किसी प्रकार अर्थक्रिया नहीं बन सकती और सर्वथा अनित्य माना जाय तो वहाँपर भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती। इसी तरह उनका यह कहना है कि सूक्ष्म अवयवरहित स्थूल ही अवयवी द्रव्य प्रतिभासमें आता है अर्थात् जो कुछ बड़ा स्थूल अवयवी समझमें आ रहा है उसमें सूक्ष्म अश कुछ भी नहीं है यह कथन भी अयुक्त है, क्योंकि इसको सिद्ध करने वाले अनुमानमें भी विरुद्धता है। अवयवी अवयवोंसे सर्वथा भिन्न है, क्योंकि सर्वथा भिन्न प्रतिभास होनेसे। तो यह कथन विरुद्ध है प्रत्यक्षसे बाधित है अर्थात् ये सब अवयवी तभी हैं जब इनका सूक्ष्म अंश है और इन स्कंधोंका छेदन भेदन भी होता है उससे सूक्ष्मता प्रकट होती है। यों सूक्ष्म होते-होते कभी इतना भी सूक्ष्म हो जाता है कि वह परमाणुमात्र रह जाता है। जितने अवयवी हैं वे सब सूक्ष्म अवयवोंसे सम्पन्न हैं। इस तरह केवल अवयवी हो, केवल अवयव हो, केवल नित्य हो, केवल अनित्य हो इन सभी एकान्तोंका निराकरण हो जाता है। इसको सिद्ध करने वाले अनुमान सब विरुद्ध होते हैं। इसी कारण उपमान आदिकमें सूक्ष्म अवतवरहित अवयवी प्रतिभास नहीं हो सकता। अथवा अययवीसे भिन्न अवयव भी प्रतिभासमें नहीं आता। यों सूक्ष्म आदिक एकान्त प्रत्यक्षबुद्धिके गोचर नहीं हैं यह कहना सयुक्तिक सिद्ध है और इस कारणसे उन सबका प्रतिषेध्य सिद्ध करनेके लिए स्वभावानुपलब्धि हेतु सिद्ध होता ही है।

स्याद्वादविधिसे वस्तुस्वरूपका शृङ्गार—जब निरपेक्ष सूक्ष्म स्थूल नित्य अनित्य अवयव अवयवी ये सब प्रतिसिद्ध हो गए तो सिद्ध होता है कि सूक्ष्म आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के सम्बन्धमें अनेकान्त है। वही वस्तु स्थूल दृष्टिसे सूक्ष्म है और, वही वस्तु सूक्ष्म की दृष्टिसे स्थूल है। जो उन सूक्ष्म और स्थूलोंके बीचमें किसी भी एकके प्रधान करनेपर अन्य आकार गौण हो जाते हैं। और इस तरहसे उनमें सूक्ष्म और स्थूलकी सिद्धि होती है। यह घट है यह परमाणु है, ये रूपादिक हैं ये सभी प्रमाणसिद्ध बातें हैं। जो घटको जानना चाहता है वह घटकी विवक्षा करता है तो उस विवक्षामें घट प्रधान हो जाता है और परमाणु अनुमेय अथवा गौण हो जाते हैं और इसी प्रकार रूपादिक भी गौण हो जाते हैं क्योंकि उस समय परमाणु और रूपादिककी विवक्षा नहीं है। यद्यपि उस घटमें परमाणु भी है। जैसे कि अवयव और रूप, रस, आदिक भी है लेकिन जो एक पिण्डरूपसे घटको निरख रहा है उसकी दृष्टिमें घट प्रधान है।। परमाणु और रूपादिक प्रधान नहीं हैं। और, जब कोई परमाणु और रूप आदिकके कहनेकी इच्छा करता है तो उसकी विवक्षामें वे परमाणु और रूपादिक ही प्रधान है, अवयवी घट प्रधान नहीं हैं, क्योंकि उस सम्बन्धमें घटकी विवक्षा नहीं है, विवक्षा है परमाणुओंकी और रूपादिककी। अतः जब एक प्रधान है तब अन्य आकार गौण होते हैं, यह कथन युक्तिसंगत है। यहां शंकाकार यह कहता है कि जब अवयव अवयवी दोनोंके सत्त्वकी अविशेषता है अर्थात् अवयव भी है, अवयवी भी है, दोनोंका सत्त्व समान है तब समानरूपसे अथवा अटपट रूपसे विवक्षा और अविवक्षा बन जाना चाहिए। जब अवयव अवयवी दोनोंका सत्त्व है तो क्यों कभी अवयवकी विवक्षा बनती है और फिर क्यों कभी अवयवकी विवक्षा बनती है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि भाई वह अर्थित अर्थात् विवक्षा उस वस्तुकी सत्तामात्रके कारण नहीं है। यदि वस्तुकी सत्तामात्रके कारणसे विवक्षा अविवक्षा बने तो वहाँ कोई विवेक न रहेगा और अटपट कुछ भी विवक्षा करनेका प्रसंग आयगा। मगर वस्तुकी सत्तामात्रके कारण विवक्षा नहीं हुआ करती। किन्तु विवक्षा होनेका कारण तो मोहविशेषके उदय है और मोहविशेष याने रागादिकका जो उदय होता है वह मिथ्यादर्शन आदिके अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके निमित्तसे होता है। सत्त्व दोनोंका समझ लिया, मगर जिस ओर कथनका राग हुआ उसकी विवक्षा बन जाती है। सत्त्व सबका समान है फिर भी जिस ओर विवक्षा हुई, राग हुआ, इच्छा हुई, जो कि मोहके उदयकी बात है उसके कारणसे विवक्षा अविवक्षा बनती है।

प्रकृत वस्तुधर्ममें सप्तभङ्गीका निर्देशन—उक्त विधिसे यहां यह सिद्ध हुआ कि वस्तु स्यात् अद्वैत स्वरूप है स्यात् पृथक्त्व स्वरूप है। ऐसे यहां दो मूल भंग सिद्ध हुए। तो विधि प्रतिषेधकी कल्पनाके द्वारा एक वस्तुमें अविरुद्ध रूपसे प्रश्नके वशसे ये सग बातें दिखाई गई हैं। तब ये दो मूल भंग सिद्ध हो गए कि वस्तु स्यात् पृथक्त्व स्वरूप है। अब इन दो मूलभंगोंका माध्यम बनाकर शेषके ५ भंग भी जैसी कि प्रक्रिया पहिले बतायी गई है उस प्रक्रियाके अनुसार लगा लेना चाहिए। जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक और अनेकके सम्बन्धमें मूल दो भङ्ग बताकर कि स्यात् एक है, स्यात् अनेक है, शेष ५ भङ्ग [illegible] भी [illegible] है, स्यात् पृथक्त्व है, ऐसे मूल दो भङ्ग जानकर बाकीके ५ भङ्ग भी लगा लेना चाहिए। यों ऐक्य व पृथक्त्वके विषयमें सब भङ्ग ७ हुए। वे ७ भङ्ग इस प्रकार होंगे—(१) स्यादद्वैतमेव (२) स्यात्पृथक्त्वमेव (३) स्यादद्वैतं पृथक्त्वमेव (४) स्यादवक्तव्यमेव (५) स्यात् अद्वैतमवक्तव्यमेव (६) स्यात्पृथक्त्वमवक्तव्यमेव (७) स्यादद्वैतं पृथक्त्वमवक्तव्यमेव। इस परिच्छेदमें हमें यह समझाया गया है कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपसे अद्वैत ही है और गुणपर्यायोंके रूपसे नानारूप है। इस प्रकार हे प्रभो ! आपके शासनमें वस्तुस्वरूपका विशेष प्रतिपादन है।

इति आप्तमीमांसाप्रवचन सप्तम भाग समाप्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[अष्टम भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी

●

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥ ३७ ॥

नित्यत्वैकन्तके आग्रहमें दोषापत्तियाँ—नित्यत्व एकान्तके पक्षमें भी एक तो यह दोष है कि वहाँ विक्रिया उत्पन्न नहीं हो सकती अर्थात् किसी प्रकारका परिणमन नहीं बन सकता और नित्यत्वैकान्तपक्षमें दूसरा यह दोष है कि क्रियोत्पत्तिसे पहिले ही कारकका अभाव बन जायगा क्योंकि वह नित्य है। तो जैसे न पहिले कार्य होता न बादमें कार्य होता, तो वह कारक ही न कहलायेगा। तीसरी बात यह है कि कहां तो प्रमाण रहेगा और क्या उसका फल रहेगा। नित्य एकांत माननेपर न तो कारकका लक्षण बनेगा और न कार्यका लक्षण बनेगा। कारक तब ही कहलायगा जब उसमें कुछ प्रभाव बने, कुछ पर्याय बने, और कार्य भी तब ही कहलायगा। तो नित्यत्वके एकांतके आग्रहमें भी संगत बात नहीं बनती। जैसे कि पहिले सत् एकांत और सत् एकांतका प्रतिबंध आ गया अर्थात् सर्वथा अस्तित्व और सर्वथा नास्तित्वमें बाधा बतायी गई और सर्वथा एकत्व या सर्वथा पृथक्त्वका एकान्तका प्रतिषेध किया गया। अब उसके ही अनन्तर यहाँ नित्यत्वके एकान्तका निराकरण किया जाता है। इस कारिकाने नित्यत्वके एकान्तके निराकरणकी सूचना दी है। नित्यत्व एकान्तका अर्थ क्या है? कूटस्थपनेका अभिप्राय रखना। सर्वथा नित्य है इसका अर्थ है कि वह सर्वथा कूटस्थ है और ऐसा अभिप्राय रखनेका नाम है नित्यत्व एकान्त उसका पक्ष करना अर्थात् आग्रह करना सो उसे कहते हैं नित्यत्वैकान्त पक्ष। इस आग्रहमें नाना प्रकारकी क्रियायें जो परिणमनरूप हैं, परिस्पंदरूप हैं वे कोई भी नहीं उत्पन्न हो सकती हैं क्योंकि नित्यत्वका एकान्त माना है। अपरिणामी कूटस्थ जब मान लिया गया तो वहाँ क्रिया कैसे सम्भव होगी? क्रिया यदि बनती है तो कूटस्थता नहीं रहती है। और, दूसरी बात यह सुनो कि क्रिया उत्पत्तिसे पहिले ही जब उस पदार्थकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पत्ति है तो इसके मायने यह है कि क्रिया उत्पत्तिसे पहिले कारकका अभाव न बनेगा। अर्थात् सदा कारक रहेगा। तो जो कूटस्थ पदार्थ है वह जैसे पहिले कारक होता है उसी तरह यह आत्मा भोगनेका कारक हो जायगा। यदि पहिले ही कारकका अभाव माना जाय याने कूटस्थ आत्मामें क्रियाकी उत्पत्तिसे पहिले ही कारकका अभाव है ऐसा स्वीकार किया जाय तो वहाँ किसीभी प्रकारका अनुभव, परिणति, सुख दुःख आदिकका बोध ये कुछ भी न बन सकेंगे। और, यों फिर सदा ही आत्मा अकारक रहेगा क्योंकि पहिलेकी तरह उत्पत्तिकालमें भी कारकका अभाव सिद्ध होता है। जो नित्य एकान्त मानते हैं उनके यहाँ कार्य उत्पन्न होनेसे पहिले जैसे वह पदार्थ कर्ता नहीं, उसमें किसी प्रकारका परिणमन नहीं, तो यों ही कार्यकी उत्पत्ति होनेपर भी कारकका अभाव ज्योंका त्यों सिद्ध रहेगा।

वस्तुको अकारक व अविक्रिय माननेपर प्रमाता प्रमाण प्रमिति आदि सबकी शून्यताका प्रसङ्ग—यहाँ शंकाकार कहता है कि कोई पदार्थ अकारक रहे और विक्रिया रहे तो उसमें क्या हानि है ? पदार्थ है किसीका कारक नहीं, और किसी प्रकारकी उसमें विकार विक्रिया परिणति नहीं, तो ऐसे सतके माननेमें क्या विरोध है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो कहाँ प्रमाण रहेगा और कहाँ प्रतितिरूप फल रहेगा ? प्रमाण कहते हैं परिज्ञान करनेको। सम्यग्ज्ञान प्रमाण है और प्रमिति उसका फल है अर्थात् सम्यग्ज्ञानके द्वारा वस्तुतत्त्वकी जानकारी हुई, यह उसका फल है। तो जब कारक न रहा, प्रमाता न रहा तब प्रमाण और प्रमेयरूप फल ये दोनों भी खंडित हो जाते हैं। जो अकारक हो वह प्रमाता नहीं रह सकता। प्रमाण स्वयं कर्तृकारक है। प्रमाण करने वाले तो यदि यह अकारक मान लिया जाय कि कुछ करने वाला नहीं तो प्रमाताका फिर अर्थ क्या रहेगा ? प्रमिति क्रिया का साधनभूत कोई कारक विशेष जो अपनी क्रियामें स्वतंत्र है, किसी अन्यकी परिणति लेकर अपनी क्रिया नहीं करता है। उसमें ही तो प्रमातापनकी उत्पत्ति होती है और भी देखिये ! समस्त क्रियाओंकी उत्पत्ति और उनकी जानकारी इन दोनों क्रियाओंका यदि कोई सर्वथा असाधन है अर्थात् उसका साधन नहीं, आधार नहीं तब उन क्रियाओंका सत्त्व ही सम्भव नहीं है, इस कारणसे वे सब अवस्तु बन जायेंगे। फिर तो शंकाकारके ही सिद्धान्तमें आत्मसिद्धि कैसे की जा सकेगी ? यदि अवस्तु होनेपर भी आत्मसिद्धि मान लेते हो तो खरविषाण आदिककी भी सिद्धि हो पड़ेगी। खरविषाण भी अवस्तु है और अवस्तु होनेपर भी आत्माकी सिद्धि मान ही रहे हो तो खरविषाण भी मान लीजिये !

चेतनार्थक्रियासम्पन्न आत्मामें अकारकत्व व अविक्रियत्वकी सिद्धिका शङ्काकारका प्रयास—शंकाकार कहता है कि देखिये ! आत्माकी अर्थक्रिया चेतना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही है। अपनेसे भिन्न अर्थात् चेतनासे अतिरिक्त कार्यकी उत्पत्ति या ज्ञप्तिका नाम अर्थक्रिया नहीं है। जो चेतन है, जानन है, प्रतिभास है बस वही तो अर्थक्रिया कहलाता। जो जाननसे व्यतिरिक्त कार्य हैं वे तो प्रधानहेतुक हैं, उनके उपादान कारण प्रधान हैं। चेतना पुरुषसे भिन्न चीज नहीं है, क्योंकि पुरुषका लक्षण ही यही है, चैतन्य पुरुषका स्वरूप है। तो जब चैतन्य पुरुषका स्वरूप है तो चेतना भिन्न हो, पुरुष भिन्न हो; ऐसा तो है नहीं, अनित्य चेतना होती नहीं, क्योंकि वह तो नित्य पुरुष का स्वभाव है। जो ब्रह्म है, पुरुष है, वह नित्य है, तो उसका जो स्वभाव है वह भी नित्य ही होगा। और वह जो चेतनाका साक्षी है, चेतना स्वरूप कार्यकी उत्पत्तिमें आत्मा साक्षी रूपसे रहता है, आत्मा उनमें परिणति नहीं करता। जो कुछ विकार हैं वह सब प्रधानका विकार है। आत्मा तो उसका साक्षीमात्र है। यदि चेतनाको प्रधान का स्वभाव मान लिया जाय तब तो पुरुषकी कल्पना करना ही व्यर्थ हो जायगी। प्रधान तत्त्वके जो कार्य हैं उनमें हैं परिणमन आदिक, पर चेतना तो पुरुषका स्वभाव है। तो जैसे पुरुषमें कोई परिणमन परिवर्तन नहीं, इसी प्रकार पुरुषके स्वभावमें चेतनामें भी कोई परिणमन नहीं। चेतनाका ही नाम है अर्थक्रिया। चेतनाको छोड़ कर अन्य कुछ क्रियाकी उत्पत्तिका नाम अर्थक्रिया नहीं है। अन्य सारी अर्थक्रिया तो प्रधान तत्त्वसे उठा करती हैं। तो यों चेतनाको यदि प्रधानका स्वभाव मान लेते, तब पुरुषकी कल्पना व्यर्थ हो जायगी और फिर प्रधानका स्वभाव मान लेनेसे चेतना अनित्य हो जायगी। जैसे कि सुख दुःख, ये प्रधानके स्वभाव हैं, तो सुख दुःख अनित्य हैं, सदा नहीं रहते हैं।

चिद्धात्वर्थरूपक्रिया सम्पन्न आत्मामें अर्थक्रियाकी अविरुद्धतासे वस्तुभूत आत्मामें अकारकत्व व अविक्रियत्वकी सिद्धिका शंकाकारका प्रयास — नित्य चेतनामें अर्थक्रिया विरुद्ध नहीं है। शङ्काकार ही कहे जा रहा कि चेतना नित्य है उसमें अर्थक्रियाका विरोध नहीं है, अर्थक्रिया है। अर्थक्रिया के मायने धातुकी अर्थरूप क्रिया। उसका प्रतिघात नहीं हो सकता, वह हटाया नहीं जा सकता है। जो चेते सो चेतना। चिद् धातु है और उसका रूप बनता है—चेतयते इति चेतना। तो उसमें क्रिया सम्भव होगी। इस क्रियाका अभाव नहीं कहा जा सकता। जैसे कि नित्य सत्ता की अर्थक्रिया विरुद्ध नहीं होती—नित्य भी है और उसकी अर्थक्रिया भी है। इसी तरह चेतना नित्य भी है और उसमें अर्थक्रिया भी है। यों चेतना नित्य होते हुए भी अर्थक्रियासे विरोध नहीं पड़ता। इस कारण मानना चाहिए कि आत्मा तो अर्थक्रिया स्वभावरूप है अतएव उसमें वस्तुत्व है ही चेतना या आत्माको अवस्तु नहीं कह सकते क्योंकि उसमें अर्थक्रियाका स्वभाव पड़ा हुआ है। कोई यदि यहाँ ऐसा सोचे कि अर्थक्रिया चेतना है और चेतना स्वभाव जिसका है वह जीव है तो उस अर्थक्रिया स्वभाव वाले जीवमें वस्तुत्व कैसे रहा ? अर्थक्रियाका जो कारण हो सो ही तो वस्तु बनेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर जो कार्य हो गया हो उसको वस्तु कैसे कहें ? बडे बडे सिद्धान्त न्यायके ग्रंथोंमें भी यह बताया है कि जो अर्थक्रियाका कारण हो सो ही वस्तु होता है। इतना ही नहीं, किन्तु जो अर्थक्रिया है वह जिसका स्वभाव हो तो वह भी वस्तु है अन्यथा अर्थ क्रिया स्वयं अवस्तु बन जायगी। क्योंकि उस अर्थक्रियामें अन्य अर्थक्रिया नहीं पाई जाती। अर्थक्रियामें यदि अन्व अर्थक्रिया हो तो इस अर्थक्रियाको वस्तु कह सकेंगे। क्योंकि अब तो अन्य दार्शनिकोंने जो शङ्काकारके विरोधी हैं, यह स्वीकार कर लिया कि जो अर्थक्रियाकाका कारण हो सो वस्तु है। तब अर्थक्रिया स्वयं अवस्तु बन जायगी क्योंकि उसमें अर्थक्रिया अन्य नहीं पाई जाती अन्यथा अर्थात् अन्य अर्थक्रिया होनेसे उस अर्थक्रियासे वस्तु मान ली जायगी तो अनवस्था दोष होगा। अब उस अन्य अर्थक्रियाका अस्तित्व कैसे बनेगा ? सो उसके लिए भी अन्य अर्थक्रिया माननी होगी। इस तरह अनवस्था दोष होता है। यदि शङ्काकार यह कहे कि अर्थक्रियामें स्वत: वस्तुपना माना गया है। अर्थान्तर क्रिया नहीं भी कर रहा, अन्य अर्थक्रियाके अभाव होनेपर भी अर्थक्रिया स्वयं वस्तुस्वभावरूप है, ऐसा स्वीकार करनेपर यहाँ सिद्ध हो ही जायगा कि पुरुष ब्रह्म भी स्वत: निरन्तर अर्थक्रिया स्वभाव वाले हैं, इस कारणसे उसमें नित्य वस्तुत्व रहेगा। विक्रिया न भी हो तो भी नित्य कारकपना रहा करता है। आत्मामें कोई विक्रिया नहीं मानी गई। परिणति कुछ न मानी जाने पर भी वह नित्य कारक माना है।

नित्य अर्थक्रियाकी प्रमाणसे सिद्धि न होनेसे नित्यत्वैकान्तके पोषणकी अक्षमता—उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि चेतना मात्रको ही अर्थक्रिया माननेका सिद्धान्त बनाने वाले पुरुषोंकी बुद्धि परीक्षामें कुशल नहीं है, क्योंकि इसमें प्रमाणसे विरोध आता है। प्रत्यक्षसे या अनुमान आदिक प्रमाणसे नित्य अर्थक्रिया कहीं भी समझमें नहीं आती, स्वसम्वेदन ही नित्य चेतना अर्थक्रियाको जानता है। ऐसी शङ्का करना भी संगत नहीं है अर्थात् यहाँ शंकाकार अर्थक्रिया सिद्ध करनेके लिए यह प्रमाण देवे कि स्वसम्वेदन ज्ञान अर्थात् अपने आपमें जो अपना परिज्ञान चल रहा है वह ही नित्य चेतना अर्थक्रियाको जान लेती है, तब यह कैसे कहा कि नित्य अर्थक्रिया का प्रत्यक्षसे और अनुमान आदिकसे कभी भी जा कारी नहीं बनती। अब यहाँ देख लो ना कि स्वसम्वेदन ज्ञान द्वारा नित्य चेतनाकी अर्थक्रिया जान ली गई है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात यों सङ्गत नहीं है कि नित्य चेतनामें यह अर्थ क्रिया है, इस प्रकारसे वहाँ विधि नहीं बनती। तो उस अर्थक्रियाकी विधिसे केवल इतना मान लेने मात्रसे कि मैं सुखी हूं, दुखी हूं या यह अनित्य है, नित्य है, जो कुछ अपने आपमें कहोगे वह सब तो अनित्यरूपसे ही जाना गया नित्य चेतना अर्थक्रियाका वहाँ परिच्छेदन नहीं है। विधिके द्वारा अनिर्णीत चेतनाको पुरुष नहीं चेत सकता है अर्थात् विधिके द्वारा निश्चित तो नहीं हुई चेतना और उसे पुरुष अनुभव करले यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात युक्त नहीं है अन्यथा अर्थात् विधिके द्वारा निश्चय किये जानेके अभावमें भी पुरुष यदि चेतनाका अनुभवन करले तब विधिकी कल्पना करना ही व्यर्थ हो जायगा, जितने भी सब शब्दादिक विषय हैं अथवा शब्दादिकके विषय घट पट आदिक पदार्थ हैं सो उन सबका विधिसे निश्चय किए बिना ही पुरुष द्वारा अनुभवमें आ जाय यह सिद्ध हो जायगा।

पूर्वाकारका परित्याग व उत्तराकारका उपादान हुए बिना चेतनामें अर्थक्रियाकी सिद्धिकी अशक्यता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि चेतना नामका वास्तविक भिन्न पुरुष हो, कोई तत्त्व हो सो नहीं है अर्थात् पुरुषसे चेतना कोई भिन्न तत्त्व नहीं है जो विधिके द्वारा निश्चित किया जाय क्योंकि चेतना तो पुरुषका स्वरूप ही है और वह स्वरूप स्वय अपने आप प्रकाशमय है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं हैं क्योंकि यदि अपरिणामी नित्य चेतना ही केवल स्वरूप है और पुरुषसे अर्थान्तरभूत विषयभूत नहीं है तो उसमें कोई अर्थक्रियाकी बात ही नहीं हो सकती है तथा जब वहाँ उसकी अर्थक्रिया ही नहीं है कुछ, तो वह वस्तु ही क्या रहेगी ? अर्थक्रियावानका स्वरूप ही सदा सर्वदा स्थिर हो और वहाँ क्रिया कहलाये ऐसी प्रसिद्धि नहीं है, अर्थक्रियाका अर्थ है परिणमन। कोई नवीन बात होगी तो वह स्वरूप ही कहलायगा। वह तो परिणमन है, क्योंकि अपने पूर्व आकारका परित्याग किया उसने और उत्तर आकारका ग्रहण किया। ऐसी बात अपनेमें और परपदार्थमें सर्वत्र प्रतीत होती है अर्थात् आत्माके अन्य भी ऐसे काम नज़र आते हैं कि इसने कोई बुरी हालतका तो त्याग किया और कोई नवीन हालत उत्पन्न की। और, इन घट आदिक बाह्य पदार्थोंमें भी यह नजर आता है कि यह पूर्व उत्पन्न अवस्थाका तो त्याग करता है और उत्तर अवस्थाका ग्रहण करता है। सो यह पूर्व स्वभावका परिहार और नवीन स्वभावकी प्राप्तिरूप अर्थक्रियाको सर्वथा नित्यमें मान रहा है तो कैसे इसे अनुन्मत्त कहा जाय ? याने वस्तुको तो माना है कूटस्थ ज्योंका त्यों, जरा भी बदले नहीं और फिर कहते हैं कि ऐसे ध्रुव कूटस्थमें भी अर्थक्रिया है। अर्थक्रियाका अर्थ यह है कि पूर्वस्वभावका त्याग करना और नवीन स्वभावका ग्रहण करना। तो जब अर्थक्रियाके माननेसे ही यह बात विदित होती है कि परिणमन हो तो अर्थक्रिया होती है, उसे सर्वथा कूटस्थ नित्यमें कैसे कहा जा सकता है ?

आत्माको अपरिणामी कूटस्थ नित्य माननेमें अर्थक्रियाकी असंभवता—अपरिणामी आत्मासे अभिन्नस्वरूप चेतनामें परिस्थितिवश अर्थक्रियाकी बात घटाने वाले शंकाकार जरा बतायें कि वह अर्थक्रिया उत्पत्तिरूप है या ज्ञप्तिरूप, याने जो क्रिया होती है वह दो रूपोंमेंसे किसी रूप होती है। या तो वह उत्पन्न हुई है, इस कारण वह क्रिया है, या उसकी जानकारी हुई है तो वह भी अर्थक्रिया कहलाती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। सो जो निरन्तर अवस्थित है। कूटस्थ है उस पदार्थमें न तो द्रव्यरूप क्रिया सम्भव है और न ज्ञप्तिरूप क्रिया सम्भव है। क्योंकि कूटस्थ नित्यमें कारक और व्यापक हेतुका व्यापार नहीं हो सकता। जो सर्वथा नित्य है, कूटस्थ है उसमें कारक हेतुका व्यापार नहीं हो सकता। जो सर्वथा नित्य है, कूटस्थ है उसमें कारक हेतुका क्या व्यापार है अथवा जाननकी क्रियाका क्या व्यापार है ? पुरुष अर्थकी उत्पत्ति रूप चेतनाक्रिया तो है नहीं, जिससे कि कारक हेतुके उपादानका अथवा सहकारी कारणका वहां व्यापार हो सके। यदि चेतनाकी अर्थोत्पत्तिरूप क्रिया मानते हो अथवा कारकहेतुके सहकारी होनेरूप क्रिया मानते हो तो उसमें अनित्यताका प्रसंग हो जायगा फिर कूटस्थ कहाँ रहा ? चेतना पुरुषकी ज्ञप्तिरूप क्रिया है, यह भी कहना युक्त नहीं। जैसे उत्पत्ति क्रियाका विरोध इसी प्रकार ज्ञप्तिक्रियाका भी अपरिणामीमें विरोध है क्योंकि ज्ञप्तिरूप क्रिया माननेपर प्रमाताके और प्रमाणके व्यापार सिद्ध हो जाता है सो उसमें उत्पादव्यय स्पष्ट नजर आता है। सो परिणामी मान लीजिए चेतन को फिर कोई विवाद ही नहीं रहता।

ज्ञप्तिक्रियाको पुरुषस्वभाव माननेपर परिणामकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि पुरुषरूप पदार्थकी चेतना नामक अर्थक्रिया न तो उत्पत्तिरूप है, न ज्ञप्ति रूप है किन्तु वह तो स्वभाव ही है याने चिद्‌ब्रह्ममें ज्ञप्ति स्वभाव है। उसमें उत्पत्ति या ज्ञप्तिरूप किसी भी प्रकारकी क्रिया ही क्यों कहते हो ? क्योंकि कूटस्थ पुरुषके अर्थात् चिद्‌ब्रह्मके तो ज्ञप्तिका सदा स्वभाव ही पड़ा रहता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यदि चेतना अर्थक्रिया स्वभावसे ही मानते हो तो परिणाम तो सिद्ध हो ही गया। जाननेकी बात तो बन ही गई और जाननेमें होता क्या है कि पहिले न जाननेका परिणाम था। अब न जाननेकी पर्यायको छोड़कर जाननेकी पर्यायका ग्रहण किया है। तो उसमें परिणति तो सिद्ध हो ही जाती है। परिणाम कहो, विवर्त, धर्म, कहो, अथवा अवस्था, विकार कहो, ये सब स्वभावके नामान्तर हुए पर्यायवाची शब्द हुए।

प्रस्तुत स्वभावको परिणाम विवर्त आदिको नामान्तरकी सिद्धिमें शंका—शंकाकार कहता है कि देखिये ! वस्तुकी पूर्वस्थितिका तिरोभाव होना और उत्तर आकारका आविर्भाव होना है, इसीके मायने परिणाम कहा याने जो वस्तु है उसमें पूर्व आकार तो ढक गया और उत्तर अवस्था प्रकट हो गयी, तो इसका नाम परिणाम है। इस परिणामको कैसे स्वभाव प्रयाय कह दिया। स्वभाव तो सदा ही अवस्थित स्वरूप है। उसे ही स्वभाव कहना चाहिए, पूर्व आकारका तिरोभाव होना और उत्तर आकारका प्रकट होना, यह तो परिणामकी बात है। स्वरूप स्वभाव तो सदा अपरिणामी व अवस्थित होता है। सो स्वभावसे परिणमन पृथक चीज है जिस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार प्रस्तुत स्वभाव परिणामका नामान्तर सिद्ध न हुआ उसी प्रकार विवर्त, विकार धर्म व अवस्थाओंमें भी स्वभावके नामान्तरत्वकी बात सिद्ध नहीं होती, क्योंकि विवर्त आदिक सभी तत्त्व कादाचित्क हैं कभी हुये और मिट गए, इसी प्रकार धर्म विशेष भी स्वभाव पर्याय न कहलायेगा, क्योंकि धर्म सामान्य तो साधारण है और जो साधारण है वह असत् ही है। क्षणिकवादमें सामान्य तत्वको असत् माना गया है। सत् तो स्व-लक्षण है तो धर्म सामान्यका तो असत्त्व है और जो सत्ता नहीं नष्ट होती है ऐसा असाधारण स्वरूप है वही स्वभावरूप है, इस कारण परिणाम, विवर्त, धर्म, अवस्था विकार इनको स्वभावके पर्यायवाची शब्द न कहना चाहिए।

परिणाम, विवर्त आदिको प्रस्तुत स्वभावका पर्याय सिद्ध किये जानेमें की गई उक्त शंकाका समाधान—अब इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा मानने वाला दार्शनिक वास्तवमें तत्ववेदी नहीं है, क्योंकि एकान्तसे सत्में अवस्था नही रहे ऐसा कोई स्वभाव सम्भव नहीं है, अर्थात् कोई वस्तु है, स्वभाव है तो वह तभी है जब उसमें परिणमन होता हो सर्वथा अपरिणामी सदा अव्यस्थित कोई तत्व होता ही नहीं है और सतत रहने वाला स्वभाव है सो यह तो बताओ कि वह किसी प्रमाणसे जाना गया या नहीं जाना गया ? स्वभाव किसी प्रमाणसे नहीं जाना गया। तो उसका सत्व ही क्या रहा ? उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रह सकती, क्योंकि यदि इस तरहसे किसी तत्वको मान लिया जाय कि वह किसी प्रमाणसे जाना नहीं गया, फिर भी पदार्थ है तो यों तो खरविषाण आदिककी भी प्रतिष्ठा हो जाना चाहिए। अर्थात् आकाशपुष्प गधेके सींग, बंध्यापुत्र आदि ये भी सद्भूत वस्तु बन जाना चाहिए, सो तो नहीं है। तो जो सतत् अवस्थित रहे ऐसा कोई स्वभाव नहीं है यदि वह किसी पदार्थसे न जाना गया हो तो उसका सत्व ही नहीं है, और यदि प्रमाणका स्वभाव जाना गया है तो वहाँ यह बात सिद्ध हो गई कि जो अज्ञातपना था उसका निराकरण हुआ, और अब ज्ञातपनेका उदय हुआ तो परिणमनका लक्षण घटित हो गया। जो तत्व अज्ञात था वही ज्ञात बना। अज्ञात दशामें आया अर्थ जो था ज्ञात दशामें वही तत्व आया है। तब कैसे नहीं उस परिणामको स्वभावका पर्यायवाच्ची कहा जाय ? इसी प्रकार विवर्त आदिक भी स्वभावके नामान्तर कहे सो वह ठीक ही है। यहाँ स्वभाव भी कथंचित् नित्य सिद्ध होता है। यद्यपि वस्तुमें जब पर्यायें प्रति समय उत्पन्न होती हैं, विलीन होती हैं तो उसके साथ स्वभावको भी इसी तरह घटित करना चाहिए। क्योंकि स्वभाव और स्वभाववानमें अभेद है। और धर्मकी बात सुनो धर्म सामान्यको जैसे साधारण कहा है, उसी प्रकार स्वभाव सामान्य भी साधारण है। सो आत्मा आदिके विशेषोंको स्वभाव विशेष पर्याय कहना चाहिए और परिणाम आदिक सामान्यको स्वभाव सामान्य पर्याय कहना चाहिए। जब स्वभाव परिणमन सामान्य माना गया है तो वह सामान्य पर्याय है। जब उस परिणाम आदिकको विशेष स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूपमें देखते हैं तो वह स्वभाव रूपकी विशेष पर्याय हैं। ज्ञप्तिक्रियाको पुरुषस्वभाव माननेपर यही सिद्ध हुआ कि पूर्व आकारका तिरोभाव हुआ और नवीन आकारका आविर्भाव हुआ वहाँ तो इसीके मायने है नाश और उत्पाद। नाश कहो या पूर्व आकारका तिरोभाव कहो दोनों ही एक बनत हैं। उत्पाद कहो या उत्तराकारका आविर्भाव कहो एक ही बात है। यो नाश उत्पाद स्थिति वस्तु स्वभाव है। यदि वस्तु में सर्वथा नाश और उत्पादका अभाव हो तो स्वभाव ही सम्भव नहीं होता। जैसे खरविषाणका सर्वथा न नाश है न उत्पाद, तो वह कोई स्वभाव न रहा। इसी प्रकार जिस जिस वस्तुके बारेमें ऐसी कल्पना उठे कि वहां न नाश है न उत्पाद तो वहाँ यह निर्णय जानिये कि वह तो स्वभाव ही नहीं ठहर सकता।

वस्तुके उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक स्वरूपका निर्णय—उक्त प्रकार नाशोत्पादके अभावमें स्वभाव जब असंभव है तब यह मानना चाहिए कि यहां विनाश और उत्पत्ति का निवारण करनेका हठ अबुद्धिपूवक हुआ है। प्रत्यक्ष आदिकसे विरोध होनेसे क्षणिक एकांतकी तरह। अबुद्धिपूर्वकका अर्थ है मिथ्याज्ञान पूर्वक याने जो पुरुष विनाश और उत्पादका निषेध करे वह मिथ्याज्ञानके बलपर करता है। वास्तवमें विनाश और उत्पादका निषेध नहीं किया जा सकता। कोई वस्तु है तो उसमें ये तीनों बातें प्रति समय अवश्य हैं कि पुरानी पर्यायका विलय हो, नवीन पर्याय बने और वह पदार्थ वहीका वही रहे। जैसे जीवमें क्रोध पर्याय हुई शान्त पर्यायका घात हुआ, पर जीव वही है जो शान्त पर्यायमें था, अब क्रोध पर्यायमें है सर्व पर्यायोंमें जो व्यापक है वही जीव है। विनाशोत्पत्तिविवारण अबुद्धिपूर्वकं प्रत्यक्षादिविरोधात् इस अनुमान प्रयोगमें दिया गया हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि पुरुषको, आत्माको, चिद्ब्रह्म को उत्पादव्ययध्रौव्यरूप स्वीकार करना स्वसंम्वेदन प्रत्यक्षसे सिद्ध है। अपना अपना अनुभव बतायेगा कि यह जीव नवीन पर्यायमें तो व्यक्त होता है और पुरानी पर्याय रूपसे अव्यक्त हो जाता है। यह सबका अपना अपना ज्ञान बना देगा। अथवा स्मरण से जाना जाता है कि जो पदार्थ आज नई अवस्थामें है वही पदार्थ पहिली पर्यायमें था अन्यथा उसका स्मरण नहीं हो सकता। किसी पुरुषको देखकर जो स्मरण होता है यह वही पुरुष है या प्रत्यभिज्ञान होता है तो तभी होता है जब उसमें उत्पादव्यय ध्रौव्य सम्भव हैं। अथवा तर्क ज्ञानसे अनुमानज्ञानसे आगम प्रमाणसे सभी प्रकारसे सिद्ध होता है कि चिद्ब्रह्म उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप पाया ही जाता है। इसमें कोई बाधक प्रमाणसम्भव नहीं है विनाश और उत्पादसे रहित कोई भी वस्तु कभी प्रतीत नहीं होती। किसीकी प्रतीतिमें क्या ऐसा आया कि तत्त्व तो है, पर विनाश और उत्पाद नहीं है। ऐसी कोई भी बात दिखा देवें कि इसका विनाश और उत्पाद रहित वस्तुमें प्रत्यक्षसे ही विरोध है अनुमानमें जो क्षणिक एकांतमें प्रत्यक्षका विरोध आता है इस कारण उसका विधान होना अज्ञानपूर्वक है। सो इसमें साध्य और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधन दोनों पाये जाते हैं सर्वथा कोई स्थिति रहित हो ऐसा किसी भी ज्ञानका प्रत्यक्ष आदिकमें प्रतिभास नहीं है, इस कारण क्षणिक एकांतके दृष्टांतमें साधन विकलता नहीं है और साध्य शून्यता भी नहीं है। जैसे कोई पदार्थ स्थिति रहित माना जाय तो वह मिथ्याज्ञानपूर्वक कहलायगा। इसी प्रकार कोई पदार्थ निरन्वय क्षणिक माना जायगा तो यह आशय भी अज्ञानपूर्वक कहलायगा। पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यसे बंधा हुआ है। सत्ता तभी किसी वस्तुकी रह सकती है जब कि वह नवीन अवस्थाके रूपसे उत्पन्न हो और पुरानी अवस्थाके रूपसे नस्ट हो और उसका आधार भूत द्रव्य वहीका वही रहा करे तब सत्ता रह सकती है। ऐसा कोई पदार्थ उदाहरण में न मिलेगा कि केवल रहता ही रहता हो, बनता और बिगड़ता न हो या कोई केवल बनता ही बनता हो, बिगड़ता न हो, बना रहता न हो या कोई पदार्थ केवल बिगड़ता ही हो, न बने न बना रहे, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। है कुछ तो वह नियम से नवीन अवस्थामें आता है पुरानी अवस्थाको विलीन करता है और सर्व अवस्थाओं में वहीं द्रव्य जो पहिले था सो अब भी बना रहता है। इसी आधारपर, आत्माका अस्तित्व सिद्ध है। पुद्गल भौतिक पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध है। अतः मानना होगा कि सर्व पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं और तभी उनमें अर्थक्रिया या कोई व्यापार सम्भव होता है। अतः नित्यताका एकांत माननेपर कोई काम नहीं बन सकता।

अव्यक्त अर्थात् प्रधानतत्त्वकी सवथा नित्यताके निराकरणकी सूचना

जिस प्रकार आत्मत्वकी सर्वथा नित्यताका निराकरण किया गया है उसी प्रकार समझना चाहिए कि अव्यक्त याने प्रधान तत्त्वकी भी नित्यता नहीं है। सांख्य सिद्धान्त में दो मूल पदार्थ माने गए हैं—आत्मा और प्रकृति। तो अभी उक्त प्रकार आत्माकी नित्यताका निराकरण किया गया कि आत्मा सर्वथा अपरिणामी हो, पूर्वपर्यायका त्याग न करे, उत्तर पर्यायका ग्रहण न करे ऐसा यदि अपरिणामी नित्य माना जाय तो वहां किसी भी प्रकारसे विक्रिया नहीं बन सकती। इसी प्रकार अव्यक्त प्रधानको नित्य माना जाय तो वहांपर भी कोई कार्य न बन सकेगा। और, भी देखिये! यदि प्रधान सर्वदा नित्य ही है तो उस अव्यक्त तत्वसे जो भी बात व्यक्त होती है महान अहंकार आदिक वे भी सब नित्य कहलाने लगेंगे, क्योंकि महत्ता अहंकार आदिक कार्य उस नित्य प्रकृतिसे अभिन्न हैं। तो जो नित्यसे अभिन्न हो उसे अनित्य नहीं कहा जा सकता। नित्यसे अभिन्नको भी यदि अनित्य कह दिया जाय तो चेतनमें भी अनित्यता की आपत्ति आ जायगी अर्थात् चेतन है नित्य आत्मासे अभिन्न। तो अब यहाँ मान लिया है कि नित्यसे जो अभिन्न हो वह भी अनित्य हो जाता है तो नित्य आत्मासे अभिन्न चेतनको भी अनित्यपना लग जायगा। और, यदि सर्वथा व्यक्तको भी नित्य मान लिया जाय, जो अहंकार आदिक प्रकट हुए हैं उन भावोंको भी यदि सर्वथा नित्य मान लिया जाय तो वहां प्रमाण और कारकोंका व्यापार नहीं हो सकता। ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थितिमें वह अप्रमेय और अनर्थक्रियाकारी है। जब वह अवस्तु हो तो अर्थक्रियाकारी बन नहीं सकता। इन सब बातोंको अब अगली कारिकामें स्पष्ट करते हैं :

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत्।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः ॥ ३८ ॥

व्यक्त महदादिकी व्यक्तिके कारणभूत प्रमाण और कारकोंको सर्वथा नित्य माननेपर विकार्यत्वका अभाव होनेसे महादि—यदि व्यक्त, महान, अहंकार आदिक प्रमाण और कारकोंसे प्रकट होता है यह माना जाता हो, जैसे कि इन्द्रिय के द्वारा इंद्रियके विषयभूत पदार्थ प्रकट होते हैं इसी प्रकार महान, अहंकार, शरीर आदिक व्यक्त पदार्थ प्रमाण और कारकोंसे व्यक्त होते हैं यह माना जाता हो तो सुनो प्रमाण और कारक तो शंकाकार द्वारा नित्य माने गए हैं, तो जब प्रमाण और कारक नित्य हैं तो विकार अब क्या हो सकेगा ? इस तरह हे प्रभो ! जो आपके शासनसे बहिर्गत हैं, एकांतवादी हैं उनके यहां कार्यकारण आदिक इन लौकिक तत्त्वोंकी सिद्धि नहीं हो सकती। यह एकांतवादी विचार करे कि जो प्रमाण होता है वह नित्य नहीं कहला सकता। प्रमाण स्वयं नित्यानित्यात्मक है। एकांततः प्रमाणकी नित्यता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि यदि प्रमाणको नित्य मान लिया जाय तो प्रमाणके द्वारा की गई जो अभिव्यक्ति है अर्थात् प्रमाणके द्वारा जो कुछ प्रकट हुआ है ऐसा जो प्रमितिरूप व्यक्त, परिणति, महान, अहंकार आदिक व्यक्त स्वरूप हैं वे नित्य बन बैठेंगे। याने सदैव महान अहंकार आदिक एक प्रकारसे होते ही रहना चाहिए। क्योंकि अब ये अहंकार आदिक नित्य प्रमाणसे व्यक्त हुए हैं, तो प्रमाणको नित्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार कारकको नित्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कारकके द्वारा जो अभिव्यक्ति बनी है अर्थात् उत्पत्तिरूप अभिव्यक्ति हुई है वह भी निरन्तर होते रहना चाहिए। क्योंकि कारकको नित्य माना है तो नित्यसे जो बात प्रकट होगी वह सब भी निरन्तर होगी। यदि उसकी निरन्तरता नहीं है तो कारकको नित्य नहीं कहा जा सकेगा। और इसी प्रकार प्रमाण और कारकोंसे प्रकट हुआ है व्यक्त यह नहीं कहा जा सकता। जैसे कि एकान्तवादी यह दृष्टान्त यहाँ देकर उसे प्रमाण और कारकोंको व्यक्त बताते हैं, क्या दृष्टान्त देकर कि जैसे इन्द्रियके द्वारा विषयभूत पदार्थ व्यक्त होते हैं इसी प्रकार प्रमाण और कारकोंके द्वारा महान अहंकार आदिक तत्त्व व्यक्त होते हैं। यों प्रमाण और कारकों से उनकी अभिव्यक्ति सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि प्रमाण और कारकोंसे वे अहंकार व्यक्त हुए हैं तो इसके मायने यह हुआ कि पहिले यह व्यक्त न था, उनके व्यंजकके व्यापारसे अभिव्यक्ति प्रतीत हुई है, प्रकट हुआ है कुछ तो यह मानना होगा कि वह पहिले प्रकट न था और जैसे प्रकट करने वाले कारणसे

Version 1